Year 2, Issue 8
Oct.-Dec., 2005

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष २ - अंक ८, अक्टूबर-दिसम्बर २००५

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
ग़ज़ल	डॊ. अम्बाशंकर नागर	४
अमर कथाकार प्रेमचन्द जी	आचार्य रघुनाथ भट्ट	५
गाँधी जी का इतिहास चिन्तन : आधुनिकता के समक्ष सनातनता का सत्याग्रह	आशुतोष कुमार मिश्र	८
भावीचरण शुक्ल	डॊ. भगवती सिंह 'नागदन्त'	१२
सांस्कृतिक विरासत	अगस्त्य कोहली	१३
महिमा नामों की	भुवनेश्वरी पाण्डे	१५
थो ी सी देर	सुधा गोयल	१६
तुम	ज्योति कालरा 'उम्मीद'	१९
पाकिस्तान की उर्दू कविता में राम, कृष्ण और शिव	डॊ. हरिकृष्ण प्रसाद गुप्त 'अग्रहरि'	२०
पता नहीं	पाराशर गौ	२२
रालू	डॊ. नीरजा माधव	२३
मेरा गाँव किधर है	सरन घई	२६
जीवन एक बहती नदिया	डॊ. सरला अग्रवाल	२८
इंसा हो, हर मुश्किल से....	मधुप शर्मा	३३
शगुन की मेंहँदी	कमल कपूर	३४
परिवर्तन	लता पाण्डेय	३९
वापसी	भारती राजा	४०
दर्द	निर्मल सिद्धू	४४

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

संपादकीय (अंक ८, अक्टूबर-दिसम्बर २००५)

'वसुधा' दो वर्ष पूरे कर रही है और अपनी इस कालावधि में सहयोग देने वाले सभी साहित्यकारों की आभारी है जिन्होंने अपनी अमूल्य कृतियों से इसे सजाया-सँवारा है। साहित्यकार और पत्रिका का अटूट सम्बन्ध है। दोनों एक-दूसरे के अस्तित्व हैं। साथ ही पाठकों ने इसे भरपूर सराहा है। वसुधा के लिए लिखे गये पाठकों के पत्र इसके साक्ष्य हैं और वसुधा उनकी इस सराहना की आभारी है।

साहित्यकार और पाठक दोनों ने मिल कर वसुधा को जिस मुक़ाम पर लाकर ख ा कर दिया है, यही वसुधा का सौभाग्य है, गौरव है। वसुधा दोनों के स्नेह से लाभान्वित एवं गौरवान्वित हुई है। वसुधा का गरिमामय अस्तित्व दोनों का अभारी है।

वसुधा के कनेडियन साहित्यकारों और पाठकों ने मिल कर २३जुलाई को कालजयी मुंशी प्रेमचंद की १२५वीं वर्षगाँठ मनाई। इसके लिए ऑन्टेरियो लेक के कगार का स्थान चुना गया। पहली बार प्राकृतिक वातावरण में इस प्रकार का आयोजन आयोजित किया गया था। बिना किसी आडम्बर के, रमणीय, आँख जु ाने वाली प्राकृतिक छटा की छाँव में, प्रेमचंद जी की लेखनी से उपजे उनके सीधे, सरल प्रकृति, अमर पात्रों की यादों ने सभी को अभिभूत किया। वो अपनी लेखनी द्वारा अपने पात्रों की जीवन्तता में जीवित हुये और हरदम रहेंगे।

भारत का स्वतंत्रता दिवस भी ब ी धूम-धाम से मनाया गया। सौभाग्यवश मारखम नगरपालिका ने १५अगस्त को 'इंडिया डे' घोषित किया अतः इसे मनाने के लिए एक कमेटी का निमार्ण किया गया जिसकी 'सह-अध्यक्षता' और 'सांस्कृतिक कार्यक्रम संचालिका' का सौभाग्य मुझे प्रदान किया गया। पूरी कमेटी की कर्मठता से आयोजन सफल हुआ। इस समारोह में भारत के प्रतिनिधि, टोराण्टो कौंसुलावास के कौंसुल जनरल माननीय श्री सतीश चन्द मेहता अपनी पत्नी श्रीमती प्रीति मेहता के साथ आये और उन्होंने उपस्थित कनेडियन अतिथिगण एवं गर्वित अप्रवासी भारतीयों की करतल ध्वनि के मध्य ससम्मान ध्वजारोहण सम्पन्न किया। मुक्त आकाश में फहराते हमारे तिरंगे झंडे के इस गौरव के साथ ही साथ आठ वर्ष की आयु के बच्चों से लेकर वयस्कों द्वारा प्रस्तुत सांस्कृतिक कार्यक्रम ने इसमें चार-चाँद लगा दिये।

१५अगस्त से सम्बन्धित एक और विशेष बात - १५अगस्त की सुबह कौंसुलावास में हुये ध्वजारोहण के अवसर पर, तकरीबन दो हफ्ते पहले ही आये कौंसुलाध्यक्ष माननीय श्री सतीश चन्द मेहता ने अपना भाषण हिन्दी में दिया एवं राष्ट्रपति का पूर्ण संदेश भी हिन्दी में ही पढ़ा जो हम अप्रवासी हिन्दी प्रेमियों के लिए गौरव की बात थी। इस बात की जितनी भी सराहना की जाये उतनी ही कम है।

राष्ट्रपति जी ने इस अवसर के अपने पूर्व भाषणों की तरह इस बार भी एक मुद्दा उठाया - 'ऊर्जा के क्षेत्र में आत्म निर्भरता', और इस विषय पर अपने विचार व्यक्त किये । निष्कर्ष के कुछ अंश, उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत हैं :

"राष्ट्र को २०२०तक अपने विश्वव्यापी तेल व गैस अन्वेषण और उत्पादन में वृद्धि कर व्यापक ऊर्जा सुरक्षा प्राप्त करनी है। भारत को वर्ष २०३०तक सौर, विद्युत अक्षय ऊर्जा के विभिन्न स्त्रोतों तथा जल और नाभिकीय विद्युत के उपयोग को अधिकतम कर और विशाल स्तर पर जट्रोंफा जैसे पौधों के माध्यम से जैव ईंधन उत्पादन बढ़ाकर ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करनी होगी।

हमें एक वर्ष में ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के लिए एक व्यापक अक्षय ऊर्जा नीति तैयार करनी चाहिए। इसमें पवन, सौर, भू-तापीय, जैव और समुद्र के जरिए ऊर्जा उत्पादन से जु े सभी मुद्दों पर ध्यान देना होगा। राष्ट्र को थोरियम पर आधारित रियेक्टरों की स्थापना की दिशा में भी कार्य करना चाहिए। नाभिकीय विद्युत उत्पादन में आत्मनिर्भरता और राष्ट्र के लिए दीर्घकालिक ऊर्जा सुरक्षा प्राप्त करने के लिए थोरियम पर आधारित रियेक्टरों पर अनुसंधान और प्रौद्योगिकी विकास एक तत्काल आवश्यकता है।

हमें वर्तमान प्रारंभिक संयंत्र अवस्था से अगले तीन वर्षों में समेकित गैसीकरण और संयुक्त चक्र मार्ग का प्रयोग करते हुए ५००मेगावाट क्षमता वाला एक विद्युत संयंत्र शुरू करना चाहिए।

समयबद्ध विधि से देश के सभी वाहनों को चलाने के लिए पूरी तरह विकसित ईंधन बनाने के लिए मोटरगा ी उद्योग के सहयोग से जैव ईंधन अनुसंधान का विस्तार करना चाहिए। इसके लिए विभिन्न मंत्रालयों और उद्योगों को उसमें शामिल कर हमें इसे मिशन पद्धति के एक समेकित कार्यक्रम का रूप देने होगा। साथ ही अनुसंधान, विकास और उत्पादन से लेकर विपणन तक एक व्यापक जैव ईंधन नीति तैयार करने की भी जरूरत है।

ऊर्जा सुरक्षा के माध्यम से ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता हासिल करना निश्चित रूप से संभव है। अपना देश इस लक्ष्य को प्राप्त करने की क्षमता रखता है। भारत के पास ज्ञान और प्राकृतिक संसाधन हैं। हमें समयबद्ध तरीके से लक्ष्य प्राप्त करने के लिए केवल एक नियोजित और समेकित मिशन की जरूरत है। आइए, हम सब मिल कर राष्ट्र के लिए पर्यावरण के अनुकूल ऊर्जा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए काम करें।"

दुर्भाग्य कब किसका द्वार खटखटाएगा, प्रकृति का प्रकोप कब किस पर हो जायेगा, किसी को नहीं पता। प्रकृति की उठी हुई भृकुटि व वक्र दृष्टि पल में ही भेद-भावरहित, अप्रत्याशित क़हर ढ़ा देती है। पिछले वर्ष २६दिसम्बर को सुनामी की लहरों ने पूर्व में अपनी ताकत का प्रमाण दे दिया था और इस बार पश्चिम में, अगस्त के उत्तरार्द्ध में, विश्व के सर्वशक्तिशाली माने गये देश अमेरिका के लुज़ियाना, मिसीसिपी व एलाबामा प्रांतों में हरीकेन केटरीना की वर्षा एवं हवा के थपे ों और उसके द्वारा निर्मित लहरों ने अपनी ताकत का लोहा मनवा लिया। संहारिक विध्वंस कर हाहाकार मचा दिया। अतः, जहाँ प्रकृति के दरबार में, तथाकथित स्वयं या दूसरों द्वारा माने गये छोटे-ब े देश कोई अहमियत नहीं रखते; वहीं, मानव चाहे जितनी भी तरक्की कर ले प्रकृति के समक्ष नगण्य है, ऐसा बारम्बार इतिहास ने प्रमाणित किया है। ऐसी परिस्थिति में ही हमें अपनी तुच्छता का आभास होता है।

इसके साथ ही साथ एक बात और महत्वपूर्ण है कि प्रकृति चाहे जिन भी कारणों से अपना भीषण, संहारिक रूप धारण करती है, मानव का दायित्व बन जाता है कि वह उसके उस रूप से यथाशक्ति स्वयं अपना व मानवता का रक्षण करे। अतः विश्व की इस धरा पर, किसी भी देश के किसी भी क्षेत्र पर प ी इस मार से बचाव करना, उसके लिए अपनी यथा-शक्ति, यथा-सामर्थ्य, योगदान देना, उसका मानव-धर्म बन जाता है।

सुनामी के समय भी भावनात्मक एवं आर्थिक रूप से 'वसुधा', 'गुडविल हिन्दी लिट्रेरी एसोसिएशन' एवं 'टोराण्टो हिन्दू गुडविल क्लब' ने अपनी सामर्थ्य भर रेडक्रास के माध्यम से सहायता की थी और इस बार भी ये संस्थाएँ सहायतार्थ प्रयास में जुटी हैं।

'वसुधा' भारतीय गौरव और हिन्दी के प्रचार, प्रसार में सतत प्रयत्नशील है। हम सभी भारतीय और देश-विदेश के हिन्दी प्रेमियों को अपने देश के गौरव और अपनी भाषा के उत्थान के लिए एकाग्रता से जु े रहने की आवश्यकता है। कर्मण्यता ही सफलता की कुंजी है।

सस्नेह

स्नेह ठाकुर

ग़ज़ल

डा. अम्बाशंकर नागर

इश्क़ की दास्तान है प्यारे
अपनी अपनी ज़बान है प्यारे।

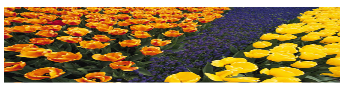 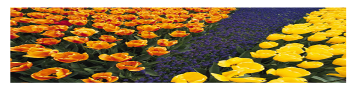

तुम जियो औ' हमें भी जीने दो
जान है तो जहान है प्यारे।

दुश्मनों को भी दोस्त कर के रख
वक्त की यह अज़ान है प्यारे।

देख बाकी न बचेगा कुछ भी
काँच का यह मकान है प्यारे।

हम तो हिन्दी हैं हिन्दी बोलेंगे
यह तो अपनी ज़ुबान है प्यारे।

हम नहीं वक्त ख़ुद बतायेगा
कौन कितना महान है प्यारे।

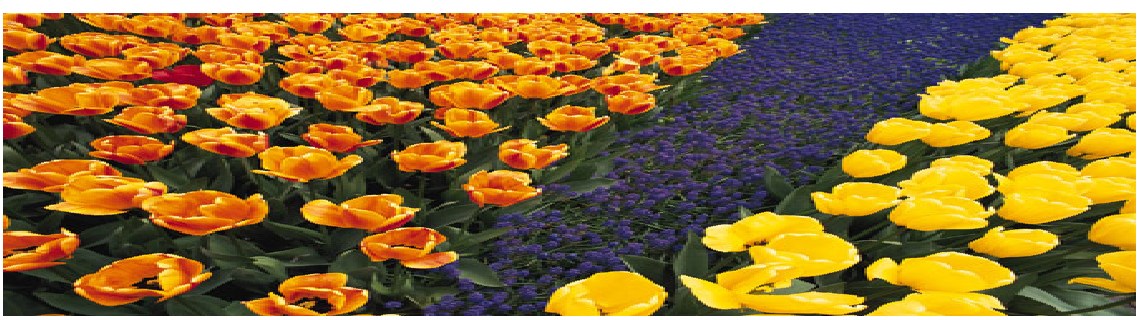

एक सौ पच्चीसवीं जन्मजयंती के अवसर पर

अमर कथाकार प्रेमचन्द जी

आचार्य रघुनाथ भट्ट

आज प्रायः भारतीय साहित्य की चर्चा की जाती है और उसको परिभाषित करने का प्रयत्न किया जाता है। वास्तव में भारतीय भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य ही भारतीय साहित्य है। भाषाएँ अलग-अलग होते हुये भी साहित्य का प्रस्थान बिन्दु एक है, विकास एक है और परिणाम भी एक है।

देखिए - भारत का मध्यकालीन साहित्य चाहे दक्षिण की भाषाओं में लिखा गया हो, चाहे उत्तर की भाषाओं में, मूल स्त्रोत और भाव एक ही हैं। संस्कृत साहित्य को, विशेषतया रामायण और महाभारत को आधार मानकर अनेक भारतीय भाषाओं के लेखकों ने मूल कथा में स्थानिक रंग जो कर मूल कथा-पट को विविधता प्रदान करते हुए भी मूल एकता या मूल भारतीयता को बनाए रखा है। प्राचीन भाषा से नई भाषाओं में प्राचीन कथानकों को नये रूप में प्रस्तुत करने का जो महान् प्रयास मध्यकाल की भारतीय साहित्य मनीषा ने किया वह अपने आप में अजो है। मध्यकाल के जहरीले वातावरण में इन लेखकों का एक मौन विद्रोह ही भक्ति के रूप में देश की अस्मिता बनाए रखने के लिए एक असाधारण आंदोलन था।

इस पर भी यह ध्यानार्थ बात है कि परदेशी शासन से आक्रान्त और त्रस्त जनता की अस्मिता को बानए रखना एक बहुत ब ी चुनौती थी। फारसी के साहित्य का बोलबाला होते हुये भी भारतीय मेधा ने उन दिनों अपनी धरोहर को क्षतिग्रस्तता से बचाया ही नहीं अपितु उसे आक्रान्ताओं के सामने न झुकने की ताकत भी दी। जहाँ ब`-ब ों ने परदेशी शासन के सामने घुटने टेक दिए थे वहाँ आम जनता के प्रतिनिधि संतों और महात्माओं ने 'संतन को कहाँ सीकरी सों काम' कहकर एक ब ी सर्वग्राही चुनौती दी और आसाम से लेकर सिन्ध तक, काश्मीर से लेकर केरल तक भारतीयता को आँच नहीं आने दी।

भारतीय साहित्य की सबसे ब ी विशेषता रही कि उसने हमेशा शाश्वत जीवन मूल्यों को मर्यादा से बाहर नहीं होने दिया। ईश्वर का एक ऐसा विश्लेषक तत्व स्थापित कर दिया कि जो मानवीय मूल्यों की हमेशा रक्षा करता रहा है। जनता के नजदीक सत्यं और शिवं की अधिक महत्ता होती है। सत्य हारकर भी विजेता रहता है। मनुष्य के दर्प और स्वार्थान्धिता के सामने हमारे साहित्यकार निर्भीकता से ल` हैं। राजा यदि जनता के सुख-दुःख को नहीं सँभाल पाता है तो शांति से उसे बदलने का संदेश भी हमारे साहित्य मनीषियों ने दिया है। साहित्य केवल मनोरंजन के लिए नहीं होता है, वह आनंद अवश्य प्रदान करता है पर वह आनंददायक तभी होता है जब मानवता अपनी उत्कृष्टता पर पहुँचती है। जनता रोना नहीं चाहती है, तो ना नहीं चाहती है, वह तो चाहती है कि

सत्य की विजय हो, शिवत्व स्थापित हो। त्याग और तपस्या मनुष्य को निर्मल बनाते हैं,माँजते हैं। वेदों से लेकर आज तक भारतीय साहित्य उन्हीं मूल्यों के विकास में लगा है।

मुंशी प्रेमचन्द इसी भारतीय साहित्य धारा के वाहक हैं। वे वास्तविक स्थिति को ब ी सहानुभूति से पाठक के दिल में उत्पन्न करते हैं पर उनका मो भावों की विजय की अपेक्षा मानवता की श्रेष्ठता को व्याख्यात करने की ओर ही होता है। उनकी कहानियों में गाँधीवाद और स्वदेशी आंदोलन ब` मुखर स्वरों में व्यक्त हुए हैं।

गाँधी का भारतीय जनता के साथ इतना तादात्म्य हो गया था कि 'जुलूस' कहानी का 'मैकू' कहता है कि 'हमारा ब ा आदमी तो वही है जो लँगोटी बाँधे नंगे पाँव घूमता है, जो देश को सुधारने के लिए अपनी जान हथेली पर लिए फिरता है। और हमें किसी ब` आदमी की परवाह नहीं है। सच पूछो तो इन ब` आदमियों ने ही हमारी मिट्टी खराब कर रखी है। उन्हें सरकार ने अच्छी-सी जगह दे दी है, बस उसका दम भरने लगे।' आज भी यही स्थिति है। आज कोई भी नेता जनता के मन में प ी गाँधीजी की इस छाप के नजदीक नहीं है और वह 'सरकार' बन गया है।

'जेल' कहानी गाँधी-युग की बोलती तस्वीर है। एक छोटा बच्चा भी 'झन्ना अंता लये अमाला', 'ताल-छलाब पीनी हलाम' - के आंदोलन से कितना जु ा हुआ है।

क्षमा और मृदुला जैसी नारियाँ सारे परिवार की कुर्बानी में भी गाँधी की राह पर अखा भगत की 'भलुं थयुं भागी जंजाल' की तर्ज पर चल प ती हैं।

'शराब की दुकान' गाँधीवादी आदर्शों की सशक्त मिसाल पेश करती है, और साथ ही भारतीय नारी जागृति की बेमिसाल तस्वीर भी। उच्च वर्गीय मिसेज सेक्सेना ने जिस तरह शराबबंदी आंदोलन का नेतृत्व लिया वह भारतीय नारी चेतना की अद्भुत चिनगारी है। इस कहानी में पक्के पियक्क ही शराबखोरों और शराब बेचने वालों की खबर ले लेते हैं। शराब बेचने वाला भी कहता है - 'अब शराब नहीं बेचूँगा, घाटा-नफा तो जिन्दगी के साथ है।'

'मैकू' कहानी में ता ीखाने के पक्के पियक्क कादिर और मैकू सामान्य जनता से आए हैं। गाँधी के आंदोलन में उन्हें रस-रुचि नहीं है। वे समझते हैं कि 'पुलिस को देखते ही ये हुर्र हो जाएँगे।' पुलिस वालों की पोल खोलते हुए वे कहते हैं - 'हाँ, वे पुलिसवाले नहीं बोलेंगे, तेरी नानी क्यों मर जा रही है। पुलिस वहाँ बोलती है जहाँ चार पैसे मिलते हैं या जहाँ कोई औरत का मामला होता है।' कादिर के शब्द आज़ाद भारत की पुलिसवालों की ओर भी संकेत करते हैं। मैकू ने शराब बन्दी के लिए आए एक स्वयंसेवक पर जोर से चाँटा मारा। चाँटा ऐसा मारा कि पाँचों उँगलियों का रक्तमय प्रतिबिम्ब वहाँ झलक उठा था। मैकू शराब पीने पर आमादा था। पर स्वयंसेवक की सहनशीलता ने उसे ज से हिला दिया था। उसने सारी दुकान को अपने डंडे से तो दिया और उसके डर से पियक्क भाग गए। मैकू विचारता है - 'मैंने जो एक थप्प लगाया, उसका रंज मुझे अभी तक है और हमेशा रहेगा।' यहाँ केवल नशेबाजी का ही विरोध नहीं है, मनुष्य में निहित मनुष्यता की चेतना की जागृति भी है। सत्य की विजय है। एक शराबी शराब छो ने के लिए कहता है - 'इन पैसों से अपने बाल-बच्चों की परवरिश करो, घी-दूध खाओ।' आज शराब की 'टूरिज़्म' के नाम पर जो पहल की जा रही है उन पहलवालों को 'मैकू' की बात पर ध्यान देना चाहिए।

स्वदेशी आंदोलन 'सुहाग की सा ी' में पति-पत्नी के बीच का वार्तालाप रंग लाने लगता है। श्रीमती गौरा और श्रीमान् कुँवर रतन सिंह दोनो प्रकृति से अलग अलग मुंडेरों पर बैठे थे। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार था। रतनसिंह ने अपने सब विदेशी वस्त्र 'होली' के लिए दे दिए। पत्नी गौरा ने तनजेब की सा ी छिपा ली। वह विलायती थी। वह गौरा की सुहाग की सा ी थी। आखिर गौरा ने वह सा ी दे दी। कुछ दिनों के बाद स्वदेशी वस्त्रों का बाजार लगा। कुँवर साहब का अस्तबल का सेवक

रामटहल 'स्वदेशी बाज़ार' में अपनी दुकान लगाए बैठा है। कुँवर साहब को देखते ही भावुक हो गया और कह उठा - 'मालकिन की सुहाग की सा ी का होली में आना कहिए और बाज़ार का चमकना कहिए। लोगों ने कहा, जब इतने ब` आदमी होकर ऐसी शकुन की चीज की परवाह नहीं करते तो फिर हम विदेशी कप` क्यों रखें।' आज स्वदेशी की भावना कितनी है, यह प्रत्येक भारतीय, खासकर महानगरों में रहनेवाला भारतीय अपने मन से पूछे।

हमारी क्रूर सामाजिकता की कहानी 'सद्‌गति' संघर्ष और घृणा की जगह पर शांत मन से रूढ़ियों और शोषणों के विरुद्ध गहरा मनोमंथन करा देती है।

प्रेमचंद ने भारतीय जीवन को बिल्कुल नजदीक से देखा था। वे गाँधीवादी राह से भारत को शांति की राह पर, सामाजिक समता पर विकसित देखना चाहते थे। घृणा और संघर्ष से वे दूर थे।

'शांति-कहानी' उनकी एक ऐसी कहानी है कि जो हमारी पश्चिमाभिमुखी जीवन-दर्शन के खोखलेपन को केवल दिखाती नहीं उसे स्वदेशी जीवन-दर्शन से भी जो ती है।

'सुज़ान भगत', 'पंच परमेश्वर' पुरुषार्थ और सत्य की ज` मजबूत करती हैं।

उनकी बहुचर्चित कहानी 'कफ़न' भी 'बुभुक्षितः किं न करोति पापं' का जीवन्त उदाहरण है।

ग़रीबी और आलसीपन आदमी को निठल्ला बना देता है। नैतिकता और जिम्मेदारी से उसका संबंध खत्म हो जाता है। साथ ही समाज की खोखली दया को भी अमानवीय बताया गया है।

'गोदान' में होरी की कथा गाँवों में चल रहे शोषण और दृढभूत खोखले संस्कारों की करुण कहानी है जो इस लोक की गोमाता से प्रारम्भ होकर अन्त में परलोक की बछिया पर समाप्त होती है। 'सवा सेर गेहूँ' कहानी का ही यह अगला प ाव है।

प्रेमचन्द जीवन के कथाकार थे। वे साहित्य को मनोरंजन या आनंदपर्यवसायी न मान कर 'सत्' और 'शिव' की ओर ले जाने वाला मानते थे। उनकी रचनाओं में भावों की अवचता और उच्चता के प्रदर्शन के स्थान पर मानवीय कल्याण की भावना को प्रमुखता दी गई है।

भारतीयता के मूल भाव से जु` इस महान क्रांतिदर्शी साहित्याकार ने इतिहास के पृष्ठों पर अपनी छाप हमेशा के लिए छो ी है। भारतीय जीवन के 'सत्य' का यह चितेरा और 'शिवता' का आराधक, भारतीय साहित्य की अक्षय-निधि है। आज हम उन्हें नम नेत्रों और नत शिर से प्रणाम करते हैं।

गाँधी जी का इतिहास चिन्तन : आधुनिकता के समक्ष सनातनता का सत्याग्रह

आशुतोष कुमार मिश्र

गाँधी जी से आधुनिकता के बाबत पूछे जाने पर एक व्यंग्यपूर्ण मुस्कुराहट के साथ उन्होंने कहा कि यह एक दिलचस्प विचार है - 'इट इज़ एन इंटेरेस्टिंग आइडिया'। गाँधी जी के सम्पूर्ण चिन्तन प्रक्रिया और कर्म की केन्द्रीय विषयवस्तु है 'सत्य का आग्रह'। गाँधी जी के लिए 'सत्य' कोई दार्शनिक अवधारणा नहीं है - क्योंकि गाँधी जी शास्त्रीय दार्शनिक पद्धतियों की अधिक चिन्ता नहीं करते थे - बल्कि एक सीधी-साधी व्यावहारिक बात है - इसी सीधी-सादी व्यावहारिक शर्त पर गाँधी जी अपने चिन्तन और कर्म को संचालित करते थे। गाँधी जी आधुनिक सभ्यता और इसके सभी अवयवों को नज़दीक से देख चुके थे। इसके दुष्परिणामों से वाकिफ़ थे। इसलिए इस सभ्यता द्वारा निर्मित भेदवादी इतिहास दृष्टि को भारतीय सनातन जीवन-पद्धति, जीवन-मूल्य के आधार पर खारिज़ करते हैं। यह एक तरह से आधुनिकता के समक्ष सनातनता का सत्याग्रह था।

संसार में इतिहास को देखने की जो दृष्टियाँ मुख्य हैं, वे हैं - आध्यात्मिक दृष्टि (हेगेल) और भौतिकवादी दृष्टि (मार्क्स)। आध्यात्मिक दृष्टि वाले ये मानते हैं कि मनुष्य मूलतः आत्मा है, इसलिए उसका सारा इतिहास उसके आत्मा के विकास के रूप में देखा जाना चाहिए। उसके लिए हेगेल 'द्वन्द्वात्मकता' का प्रतिपादन करते हैं। वे मानते हैं कि 'सृष्टि, मनुष्य, इतिहास के विकास की प्रक्रिया इसी द्वन्द्वात्मक ढंग से होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसमें विचार ही महत्वपूर्ण है। आत्मा अपने को विचारों के माध्यम से ही व्यक्त करती है। यह विचारों का द्वन्द्व है।' [1] मार्क्स इस द्वन्द्वात्मकता को स्वीकार करते हैं पर प्रक्रिया को अलग मानते हैं। मार्क्स इतिहास की व्याख्या आर्थिक आधार पर करते हैं। वे उत्पादन की पद्धति और उत्पादन के सम्बन्ध से इतिहास को प्रभावित होना बताते हैं। [2] इन व्याख्याओं में जो चीज़ें खटकती हैं; वह यह हैं कि - विचार को केवल द्वन्द्व के आधार पर ही नहीं समझ सकते, क्योंकि विचार परिस्तिथियों से भी निर्मित होते हैं। ठीक वैसे वर्ग-संघर्ष के आधार पर समाज की आन्तरिक घटनाओं/विकास को तो समझ सकते हैं किन्तु बाह्य घटनाओं को नहीं। जैसे - बाह्य आक्रमणों को वर्ग-संघर्ष के आधार पर नहीं समझ सकते हैं। एक बात और यह कि सम्पन्न राष्ट्र का सर्वहारा वर्ग और विपन्न राष्ट्र का सर्वहारा वर्ग एक जैसा नहीं होता है। अतः इतिहास को समझने के लिए कोई एक दृष्टि पर्याप्त नहीं है। न तो विचारों की द्वन्द्वात्मक पद्धति और न भौतिक द्वन्द्वात्मकता।

गाँधी जी की इतिहास-दृष्टि किसी वैचारिक-धारा से न उपज कर एक व्यावहारिक आधार लिए हुए है। यह व्यावहारिकता भारतीय संस्कृति, परिपाटी और प्रकृति की देन है। गाँधी जी अँग्रेजों के द्वारा गढ़े गए भारतीय इतिहास को अस्वीकार करते हैं। वैसे भी इतिहास और स्मृति का ब ा ही नज़दीक का रिश्ता है। इतिहास निर्माण के लिए स्मृतियों का सहयोग लिया जाता है। स्मृतियों के चयन के रूप में। अब यह इतिहास-निर्माणकर्त्ता के ऊपर होता है कि वह उन स्मृतियों में से क्या चुनता है। स्मृतियों के अपने-अपने वृहद आख्यान होते हैं या बनाए जाते हैं। इन्हीं आख्यानों के घर में अस्मिताएँ निवास करती हैं। अस्मिता की राजनीति करने वाले और उससे अपना गौरवशाली इतिहास प्रस्तुत करनेवाले मानते हैं कि अस्मिता का एक केन्द्र होता है जो इतिहास के विभिन्न दौर में रूपान्तरित होता रहता है। अस्मिता की राजनीति करने वाले अस्मिता को प्रकृति-प्रदत्त मानते हैं, और इसी के आधार पर इतिहास का निर्माण करते हैं। और यहीं से शुरू होता है इतिहास का विचलन। प्रत्येक शासन अपने निर्माण की प्रक्रिया में या फिर निर्माण के बाद अपना इतिहास बनाता है। इस

[1] आचार्य नन्दकिशोर, आधुनिक विचार, पृ. ४८-४९
[2] आचार्य नन्दकिशोर, आधुनिक विचार, पृ. ५४-५५

प्रक्रिया में वह अतीत की स्मृतियों को अपने हितों के आधार पर चयन करता है। उदाहरण के लिए देख सकते हैं कि भारत और पाकिस्तान अपने अलग-अलग स्वरूप में आते ही एक ही स्वतंत्रता संग्राम को अपने-अपने रुचियों/हितों के आधार पर अलग-अलग ढंग से पढ़ते-पढ़ाते हैं। इतिहास बनाने की यह रीति हर बार निभायी जाती है। यह प्रक्रिया भारत के सम्बन्ध में स्पष्टतः देखी जा सकती है। भारत पर शासन कर रहे अँग्रेजों ने भारत के इतिहास को नष्ट किया और फिर अपनी सर्वोच्चता के वृहद आढ्यानों के आधार पर एक नये इतिहास का निर्माण किया। यह किसी भी देश की आत्मा को मारने का सबसे कारगर उपाय है। जैसा कि डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि, 'किसी देश का नाश करना हो तो सबसे पहले उसके इतिहास को झुठलाना चाहिए, उसकी संस्कृति पर आक्रमण करना चाहिए।'[3] इतिहास को झुठलाया जाता है, फिर नये इतिहास का निर्माण कर उसमें अपनी मज़बूत स्थिति बनाई जाती है। बाद की पीढ़ी उसी इतिहास को सच मानने लगती है। उसी "इतिहास को हम किताबों में पढ़ते हैं, किन्तु स्वयं इतिहास को जन्म लेते हुए कितने लोग देख पाते हैं? यह 'जन्म' बाहर स कों पर होता है - जब हजारों लोग भय और आतंक से मुक्त होकर बाहर निकल प ते हैं, और अचानक महसूस होता है कि ये लोग राजनीतिज्ञों के खिलौने नहीं, स्वयं अपनी नियति के निर्माता हैं।"[4]

एक नये इतिहास को जन्म लेते हुए गाँधी जी देख रहे थे। एक महत्वपूर्ण घटना का कर्त्ता-साक्षी होने के कारण गाँधी जी समझ गए थे कि असली इतिहास राजा या शासक नहीं बनाते बल्कि उसका वास्तविक निर्माण तो आम जनता करती है। गाँधी जी स्वीकार करते हैं कि "इतिहास का शब्दार्थ है : 'ऐसा हो गया'। 'इतिहास' जिस अँग्रेजी शब्द का तरजुमा है और जिस शब्द का अर्थ बादशाहों या राजाओं की तवारीख़ होता है, 'हिस्टरी' मे दुनिया के कोलाहल की ही कहानी मिलेगी। इसलिए गोरे लोगों में कहावत है कि जिस राष्ट्र की 'हिस्टरी' (कोलाहल) नहीं है वह राष्ट्र सुखी नहीं है। राजा लोग कैसे खेलते थे, कैसे खून करते थे, कैसे बैर रखते थे, यह सब 'हिस्टरी' में मिलता है। अगर यही इतिहास होता, अगर इतना ही हुआ होता, तब तो दुनिया कब की डूब गयी होती। अगर दुनिया की कथा ल ाई से शुरू होती तो आज एक भी आदमी जिन्दा नहीं रहता। दुनिया में इतने लोग जिन्दा है, यह बताता है कि दुनिया का आधार हथियार - बल पर नहीं है; परन्तु सत्य, दया या आत्मबल पर है।" [5] यहाँ गाँधी जी साधन और साध्य की बात करते हुए दिखते हैं। साधन और साध्य की एकरूपता उनका ध्येय है। वे कहते हैं कि 'साधन बीज है और साध्य - हासिल करने की चीज़ पे है। इसलिए जितना सम्बन्ध बीज और पे में है, उतना ही साधन और साध्य के बीच है।'[6] गाँधी जी का स्पष्ट मत है कि अगर यह दुनिया आज भी बची हुई - बनी हुई है, तो निश्चित ही इसकी शुरुआत दया और आत्मबल के आधार पर हुई है। दया और आत्मबल 'अहिंसा' के गुण हैं। तब यह प्रश्न उठता है कि क्या अहिंसा भी इतिहास का एक तथ्य है? समाजवादी दृष्टिकोण यह मानता है कि समाज सरल से जटिल की ओर जाता है। इसके बरअक्स अहिंसा की इतिहास दृष्टि यह मानती है कि मनुष्य के सभ्यता का विकास हिंसा से अहिंसा की ओर होता है। अगर यह न हो तो हिंसा को बार-बार अपना स्वरूप नहीं बदलना प ता। हिंसा हर बार अपना रूप बदल कर काम करती है। देखा जाए तो पहले हिंसा के आधार पर प्राप्त विजय और साम्राज्य की महानता के प्रमुख कारण थे, पर बाद में यह सबसे निकृष्ट कार्य माना जाने लगा। क्योंकि हिंसा आधारित विजय की अपेक्षा अहिंसा आधारित मूल्य ही मान्य है। पहले सरकारों में युद्ध मन्त्रालय होता था जो अब रक्षा मंत्रालय हो गया है। आज पूरी दुनिया में किसी न किसी रूप में अहिंसा को मूल्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। इतिहास की गति को हिंसा से अहिंसा की तरफ बढ़ने से नये मूल्यों का विकास हुआ और उन्हें स्वीकृति मिली। जैसे - स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व - ये तीनों अहिंसा के गुण हैं। नस्ल-भेद, रंग-भेद, आर्थिक-भेद, जाति-भेद, धर्म-भेद, वर्ग-भेद आदि को इतिहास की गति धीरे-धीरे

---

[3] शर्मा रामविलास, भारतीय साहित्य की भूमिका, पृ. ३५०
[4] वर्मा निर्मल, आदि अन्त और आरम्भ, पृ. २१०
[5] गाँधी जी, हिन्दस्वराज्य, पृ. ५९-६०
[6] गाँधी जी, हिन्दस्वराज्य, पृ. ५३-५४

अस्वीकार करती जा रही है। इस तरह से देखें तो इतिहास की समग्र दृष्टि हिंसा से अहिंसा की ओर बढ़ रही है। अहिंसा एक इतिहास-सिद्ध सिद्धांत है।

गाँधी जी की इतिहास दृष्टि अहिंसा की इतिहास दृष्टि पर आधारित है। अहिंसा उनके लिए धर्म है और धर्म से इतर उन्हें कुछ भी स्वीकार्य नहीं है। हिंसा आधारित और धर्म विमुख इतिहास को गाँधी जी अस्वीकार्य करते हैं। इस तरह के भ्रामक इतिहास को पढ़ाये जाने की साम्राज्यवादी कुचक्र की पहचान करते हैं। वे कहते हैं कि 'इतिहास विषय की शिक्षा गलत दृष्टिबिन्दु से दी जाती है। अतः इतिहास के रूप में पढ़ायी जाने वाली घटनाएँ भले ही सच हों, पर जन-समाज की भूतकाल की स्थिति के बारे में वे गलत धारणा उत्पन्न कराती हैं। राष्ट्रवंशों की उथल-पुथल और युद्धों के वर्णन राष्ट्र का इतिहास हो ही नहीं सकता। हिन्दुस्तान जैसे राष्ट्र का तो हो ही नहीं सकता। ×× पर इतिहास शिक्षण में इतना ही दोष नहीं है। आजकल तो इतिहास की शिक्षा जान-बूझकर इस तरह दी जाती है जिससे गलत ख्याल पैदा हो, इसलिए अँग्रेजों के आने के पहले के काल का बहुत बुरा चित्र खींचा जाता है और अँग्रेजी राज्य के प्रति जनता मोह-मूर्छा में प ी रहे इसकी बचपन से ही कोशिश की जाती है। इसमें असत्य ही नहीं बेईमानी भी है।'[7]

अँग्रेजी साम्राज्यवादी शासन-व्यवस्था भारत के इतिहास को पलटने और उसे अपने हितों के आधार पर प्रस्तुत कर पढ़ाने की इस कुचक्र को गाँधी जी भली-भाँति समझ रहे थे। अँग्रेज जो यहाँ कर रहे थे वह कार्य कोई भी शोषक राष्ट्र करता ही है। रामविलास शर्मा कहते हैं कि 'भारत में जो शोषण सबसे ज्यादा प्रच्छन्न है, वह साम्राज्यवादी है। इसकी ठोस जाँच-प ताल करना बहुत जरूरी है। भारतीय इतिहास के विवेचन का सीधा सम्बन्ध इस पेचीदा और प्रच्छन्न साम्राज्यवादी शोषण से है।'[8] भारत ही नहीं समूचे पूर्व के इतिहास की गति को झुठलाने वाले साम्राज्यवादी पश्चिमी दृष्टि को बेनकाब करने का साहसिक कार्य एडवर्ड सईद अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ओरियन्टलिज़्म' (१९७८) में करते हैं। 'ओरियन्टलिज़्म' वास्तव में शक्तिहीनों और शक्तिसम्पन्नों के आपसी संबंधों का अध्ययन है जो यह साबित करता है कि शक्तिसम्पन्न पश्चिम ने शक्तिहीन पूर्व के साथ कितना अपमानजनक व्यवहार किया है। पश्चिम के आत्म-श्रेष्ठता के कुछ उदाहरण देखें - "पूर्व तर्क-शून्य, पतित, बचकाना, अलग (प्रकार का) है और इस तरह पश्चिम तर्कयुक्त, गुणसम्पन्न, प्रौढ़ और 'सामान्य' है।"[9]

'पूर्व को पश्चिमी समाज के कुछ ऐसे तत्वों (बाल-अपराधी, विक्षिप्त, स्त्री, निर्धन) से जो ा जाता था जिनकी उभयनिष्ठ समानता का सर्वोत्तम सटीक नाम हो सकता है घटिया दर्जे का विजातीय।'[10]

पश्चिमी लेखन और दृष्टि में यह पौर्वात्यवादी दृष्टिकोंण हमेशा व्यक्त होता रहा है। जिसमें पश्चिम हमेशा केन्द्र में और पूर्व हमेशा हाशिये पर स्थित किया जाता है। इस पौर्वात्यवादी नीति का दुराग्रही दृष्टिकोंण हाल के वर्षों में भी देख सकते हैं। उसमें एक है सैमुअल हटिंगटन की पुस्तक 'द क्लैश ऑफ सिविलिजेशन्स एंड द रिमेकिंग ऑफ वर्ल्ड ऑर्डर'[11] जिसमें हटिंगटन बिना किसी प्रमाणिक पाठ का सहारा लिए अमेरिका को केन्द्र में रखते सिद्ध करते हैं कि अगली (इक्कीसवीं) शताब्दी में संघर्ष का अंत नहीं होगा बल्कि अब सभ्यताओं का संघर्ष होगा। हटिंगटन के इस व्याख्या के केन्द्र में अमेरिका है और शेष विश्व हाशिए पर। दूसरे पौर्वात्यवादी हैं फ्यूकोयामा। जिन्होंने 'दि एंड ऑफ हिस्ट्री' की घोषणा करते हुए कहा कि 'अब किसी नयी विचारधारा का जन्म नहीं होगा और न समाज का कोई नया प्रारूप ही अब प्रस्तुत किया जाएगा। राजनीतिक दृष्टि से उदारवादी लोकतंत्र और आर्थिक दृष्टि से मुक्त बाजार-व्यवस्था यही एकमात्र विकल्प है मनुष्य के समक्ष।'[12]

उदारवादी लोकतंत्र और मुक्त बाजार-व्यवस्था को आखिरी विकल्प बताकर 'इतिहास के अंत'

---

[7] मशरूवाला किशोरलाल, गाँधी विचार दोहन, पृ. १६२-१६३
[8] शर्मा रामविलास, मार्क्स और पिछ े हुए समाज, पृ. २९५
[9] सईद एडवर्ड, ओरियन्टलिज़्म, पृ. ४०
[10] सईद एडवर्ड, ओरियन्टलिज़्म, पृ. २०७
[11] न्यूडेलही, पेंग्विन बुक्स ऑफ इंडिया, १९९७
[12] त्रिपाठी रामकृष्ण मणि, गाँधी के साथ इक्कीसवीं सदी के देहलीज़ पर-दस्तावेज़ (१००), (सं-विश्वनाथ प्र. तिवारी)

की घोषणा साम्राज्यवादी कुचक्र है, और पूँजी उसका हथियार। यह वही इतिहास है जो हिंसा (कोलाहल) से प्रारंभ होता है। इसलिए इस तरह की इतिहास-दृष्टि के समक्ष गाँधी जी भारतीय सनातन दृष्टि को रखते हैं, जिसका मूल दया, करुणा, प्रेम और अहिंसा है। इसी से इतिहास बनता है। जिस व्यवस्था में इन गुणों का अभाव हो तो वहाँ वे 'सत्याग्रह' का उपाय सुझाते हैं। गाँधी जी कहते हैं कि 'जब इस दया की, प्रेम की और सत्य की धारा रुकती है, टूटती है, तभी इतिहास में वह लिखा जाता है। xx 'हिस्ट्री अस्वाभाविक बातों को दर्ज करती है। सत्याग्रह स्वाभाविक है।'[13] आगे भी कहते हैं कि 'हिन्दुस्तान का बल सत्याग्रह या आत्मबल या करुणा का बल है। इसलिए दूसरे इतिहास से हमारा कम संबंध है। दूसरी सभ्यताएँ मिट्टी में मिल गयीं, जबकि हिन्दुस्तानी सभ्यता को आँच नहीं आई।'[14]

यहाँ दो बातें विचारणीय हैं कि 'हिस्ट्री' अस्वाभाविक बातों को दर्ज करती है और हिन्दुस्तान का बल सत्याग्रह या आत्मबल है। इन दोनों बातों को कहते हए गाँधी जी भारतीय परम्परा की अटूट जीवनी-शक्ति के प्रति विश्वास व्यक्त करते हैं। इसको इस तरह से समझ सकते हैं कि वही सांस्कृतिक परंपरा सबसे ज्यादा टिकाऊ हो सकती है जिसमें संस्कृति और प्रकृति के विग्रह का पहले ही शमन कर लिया गया हो। जिसमें पुरुषार्थ चिन्तन उच्च कोटि का होते हुए भी स्वयं मानवीय जीवन की व्यवस्था सर्वथा प्रकृति सम्मत हो। जैसा कि आनंदकुमार स्वामी ने भारतीय संस्कृति के अंतर्निहित को रेखांकित करते हुए उसे मानव स्वाभाव के सर्वथा अनुरूप बताते हुए कहा था "हमारी बनाबट ही कुछ ऐसी है कि हम अपनी अंतर्मुखता में 'आर्केटाइपल' (आद्यरूपात्मक) हैं और अपनी बहिर्मुखता में 'फिनोमिनल' (नामरूपात्मक)।"[15] गाँधी जी भारतीय-संस्कृति के इसी स्वरूप में भरोसा व्यक्त करते हैं और इसी से इतिहास की गति को समझने का प्रयास करते हैं। भारतीय सनातन-संस्कृति के प्रमुख गुण दया, करुणा, आत्मबल तथा सत्याग्रह ही इतिहास-निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन्हीं गुणों के सामन्जस्य को सिद्ध करने के कारण ही यह संस्कृति और इसका इतिहास सारे परिवर्तनों के बावज़ूद अपनी धुरी पर कायम रहेंगे। गाँधी जी हिंद स्वराज्य में कहते हैं कि, 'बहुत से अक्ल देने वाले आते-जाते रहते हैं, मगर हिन्दुस्तान अपनी जगह अडिग बना रहता है। यह उसका लंगर है।'[16] इस भरोसा के बावज़ूद भी हमारे तनिक चूकने भर से साम्राज्यवादी तूफ़ानों के ख़तरे बने रहते हैं। रामविलास शर्मा आगाह करते हैं 'आज भारत जैसा है, वह पिछले इतिहास की देन है। इस इतिहास का निर्माण हमने किया है, कभी सचेत रूप में, कभी अचेत रूप में। हम भारतवासी इतिहास की उपेक्षा करने के लिए बदनाम हैं, यही नहीं कि हम इतिहास कम लिखते हैं, वरन् जो लिखा हुआ इतिहास है, उसे भूलते भी हैं।'[17]

इतिहास को भूल जाने या भुला देने की यह आदत मूल्यहीनता है। 'इस मूल्यहीनता और दिखावे के इस विकट समय में गाँधी एक ब ी उम्मीद का नाम है। बहुतों को उनका मार्ग असंभव भले लगे, लेकिन संसार को उन्हीं के रास्ते में संभावना की रोशनी दिखती है। असल में गाँधी जहाँ संभव नज़र आते हैं, वह क्षेत्र काफी विस्तृत है और सबके काम का है। अपने को बेहतर मनुष्य बनाने के लिए हम उनके असंभव-संभव आदर्शों से तालीम ले सकते हैं।'[18] आख़िरकार बेहतर मनुष्य ही बेहतर इतिहास के निर्माण में योग देता है। वैसे भी इतिहास को पढ़ने का आनंद इतिहास में दर्ज़ नहीं होता, वरन् इतिहास को बदलने का आनन्द ही इतिहास में दर्ज़ होता है।

[13] गाँधी जी, हिन्दस्वराज्य, पृ. ६०-६१
[14] गाँधी जी, हिन्दस्वराज्य
[15] शाह रमेशचंद्र, हिंद स्वराज्य की सभ्यता दृष्टि, दस्तावेज़ (१००) - सं. विश्वनाथ प्र. तिवारी
[16] गाँधी जी, हिंद स्वराज्य, पृ. ४२
[17] शर्मा रामविलास, भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश - २, पृ. ६०८
[18] राजकिशोर, संभव गाँधी - असंभव गाँधी, जनसत्ता (हिन्दी दैनिक), २ अक्टूबर,२००४

भावीचरण शुक्ल

डा. भगवती सिंह 'नागदन्त'

मैं भावीचरण शुक्ल
लाल किले के पास रहता हूँ
नारे बेचता हूँ
राष्ट्रीय संगठनों के घोषणापत्रों को
ब ी सावधानी से पढ़ता हूँ
फिर विशेष निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ
इसके बाद नारे लिखता हूँ
फिर उन्हें बेचता हूँ
कुछ चल जाते हैं
उनसे मेरे दिन कट जाते हैं
इस बार मेरे नारे चले नहीं
घोषणापत्रों में कुछ रहा नहीं
राष्ट्रीय संगठनों ने भारपूर्वक कुछ कहा नहीं
बस पुरानी सरकार बेदख़ल हुयी
गठबंधन की सरकार सत्ता में आयी
देखें, आगे क्या होता है
इस सरकार का कब पतन होता है
नया चुनाव होगा
मेरा दिन बदलेगा।

सांस्कृतिक विरासत

अगस्त्य कोहली

'भई, अपनी कल्चर और लैन्ग्विज़ बहुत इम्पॉर्टॅन्ट् होती है।'

'होती तो है' मैं बोला। 'अपनी संस्कृति और भाषा छूट जाये, तो अपना बचा ही क्या?'

'सही बात है' रमेश बाबू ने सिर हिलाया। 'इसीलिए तो हम अपने बच्चों को हिन्दी सिखा रहे हैं।'

'अच्छा?' मुझे थो ा आश्चर्य हुआ। 'आप घर पर नियमित रूप से बच्चों को हिन्दी पढ़ाते हैं?'

'नहीं, नहीं - घर पर नहीं। वो एक हिन्दी स्कूल है न? हर संडे को दोपहर को क्लासेज़ लगती हैं। वहाँ अपने दोनों नन्हें मुन्नों को दाख़िल करा रखा है। ब ा अच्छा काम कर रहे हैं वो लोग। ब ी मेहनत करते हैं।'

मुझे अमरीका में रहते कई वर्ष हो गये हैं। कोई हिन्दुस्तानी दोस्त न मिले, तो हिन्दी बोले बिना कितने ही दिन निकल जाते हैं। पढ़ना-लिखना, सीखना-सिखाना तो बहुत दूर की बात है। यह जान कर कि शहर में एक संस्था ऐसी भी है जो विदेश में बसे भारतीय परिवारों के बच्चों को हिन्दी सिखाती है, मुझे बहुत हर्ष हुआ। सोचा, इनके बारे में कुछ और जानकारी प्राप्त करनी चाहिये।

'अच्छा यह तो बहुत बढ़िया बात बताई आपने, रमेश बाबू। क्या सिखाते हैं यह लोग इस हिन्दी स्कूल में? हिन्दी सिखाते हैं, तो बच्चे कुछ न कुछ भारतीयता भी अपने आप ही ग्रहण करते होंगे? भाषा तो समाज की आत्मा के समान है - यदि कोई व्यक्ति एक नई भाषा सीखे, तो उस समाज की संस्कृति से अछूता कैसे रह सकता है?'

'अरे नहीं, सिर्फ़ हिन्दी थो े न सिखाते हैं। कल्चर भी सिखाते हैं।'

'कल्चर माने?' भारतीय संस्कृति जैसा व्यापक विषय पढ़ाना आसान तो है नहीं। मुझसे पूछे बिना नहीं रहा गया। 'कल्चर के नाम पर सिखाते क्या है? हमारे धर्म? दर्शन शास्त्र? नृत्य और संगीत...? पारम्परिक कलाएँ?'

'अरे भई सब कुछ, कह तो रहा हूँ - ब ी मेहनत का काम है। रिलीजन्स् भी सिखाते हैं, म्यूज़िक भी, डांस भी। अपने देश की रिवाज, नैशनल सिम्बल, नैशनल एनिमल्ज़, स्पोर्ट, सब कुछ।'

रमेश बाबू की अपनी हिन्दी चाहे कितनी भी भ्रष्ट क्यों न हो, उन्हें इस बात का श्रेय तो देना ही प ेगा कि अपने बच्चों को देश की संस्कृति से जो े रखने का उन्होंने एक उत्तम रास्ता खोज निकाला था। इस संस्था और वहाँ पढ़ाई जाने वाली हिन्दी का स्तर क्या है, यह कहना तो कठिन है, पर स्तर कितना भी खराब क्यों न हो, अपने रमेश बाबू की हिन्दी से बुरा क्या होगा। और ये तो दिल्ली से हिन्दी सीख कर आये हैं !

'बस हमें तो एक ही शिकायत है इस हिन्दी स्कूल से..'रमेश बाबू की सूरत पर उदासी झलकी।

'वह क्या?'

'वो लोग स्क्रिप्ट और राइटिंग पर बहुत स्ट्रेस डालते हैं। बच्चों से ज्यादा हम माँ-बाप की मुसीबत हो जाती है। हम तो बार-बार उनसे यही कहते हैं कि वो गलत चीज़ पर स्ट्रेस दे रहे हैं। हमारा तो हर बार यही फीडबैक होता है। स्क्रिप्ट सीखने की क्या ज़रूरत है? बस बच्चों को हिन्दी बोलना सिखा दो। हिन्दी पढ़ने-लिखने की उन्हें कब ज़रूरत प ेगी। हिन्दुस्तान में भी इंग्लिश से सारा काम चल जाता है।'

'रमेश बाबू, अभी तो आप कह रहे थे कि अपने देश की संस्कृति के सम्पर्क में रहना बहुत आवश्यक है। अब आप कह रहे हैं कि हिन्दी सीखने की क्या ज़रूरत है - अँग्रेजी से सारा काम चल जाता है। मैं समझा नहीं !'

'अरे भई, हिन्दी सिखाने से मना कौन करता है। हम तो कहते हैं कि हिन्दी जरूर सिखाओ। पर बच्चों को कोई पंडित तो बनाना नहीं है हमें...बस बोलचाल के लायक आ जाये, बहुत है। ये स्क्रिप्ट में टाइम वेस्ट करने की क्या ज़रूरत है?'

'रमेश बाबू, अगर आप हिन्दी सीखेंगे, तो देवनागरी तो सीखनी ही प ेगी। बिना लिपि सीखे कोई बच्चा हिंदी कैसे सीख सकता है? वह किताबें कैसे पढ़ेगा? अभ्यास कैसे करेगा?'

'क्यों? हिन्दुस्तान में इतने लोग हिंदी बोलते हैं - अनपढ़ गँवार लोग, जिन्होंने कभी पढ़ना-लिखना नहीं सीखा. . .वो हिंदी बोलना सीख सकते हैं, तो हमारे बच्चे नहीं सीख सकते?'

'हाँ, पर वे अनपढ़ लोग तो हिंदी भाषियों के बीच पलते हैं, इसलिए पुस्तकों की सहायता के बिना भी हिंदी सीख जाते हैं। आपके बच्चों को वह परिवेश कहाँ मिलेगा? आप अपने बच्चों के साथ घर पर हिन्दी में बातचीत भी करते हैं क्या?'

'क्यों? अपने बच्चों को डिस-अडवांटेज़ में क्यों रखें? उनकी इंग्लिश का स्ट्रौंग होना बहुत जरूरी है। हम घर पर बच्चों के साथ हिन्दी बिलकुल नहीं बोलते।'

'तो घर पर आप हिंदी में बातचीत नहीं करते, हिंदी पढ़ना-लिखना आप उनको सिखाना नहीं चाहते, तो फिर बच्चे हिन्दी बोलना कैसे सीख पाएँगे?'

अचानक मुझे लगने लगा कि मैं ऐसे ही रमेश बाबू की दूरदर्शिता को श्रेय दे बैठा। वे अपने बच्चों को हिंदी सिखाने में लगे हैं, या उस संस्था की नाक में दम किये बैठे हैं जो सचमुच बच्चों को हिंदी सिखाने की कोशिश कर रही है।

अगर बच्चा हिंदी पढ़ना नहीं सीखेगा, तो किताबें और अखबार कैसे पढ़ेगा? और अगर बच्चों के लिए लिखी गईं कहानियाँ नहीं पढ़ेगा, तो हिंदी में उसकी रुचि कैसे बढ़ेगी? जब आस-पास हिंदी बोलने वाले नहीं हैं, तो पुस्तकें ही तो हैं जो उसे हिंदी के नये शब्द सिखाएँगी, व्याकरण के नियमों के उदाहरण देंगी। किंतु अगर वह पढ़ ही नहीं पाएगा, तो यह सब उसके लिए बेकार है। न जातक कथाएँ, न पंचतंत्र, न बीरबल की कहानियाँ, और न तेनालीराम के चुटकुले।

बच्चों की बात छो ि ए, अपनी बात करते हैं। मैं अगर अपने विषय में सोचूँ तो मुझे लगता है कि हिन्दी जानने का सबसे ब ा लाभ मुझे यह है कि सैक ों वर्षों से हिन्दी और उसकी सहयोगी बोलियों में जो साहित्य रचा गया है, मैं उसे पढ़ सकता हूँ, समझ सकता हूँ, और उसमें रचे-बसे गहरे चिन्तन से अपना जीवन सुधार सकता हूँ। कितनी ही बार जब किसी इच्छा या लोभ के कारण मन व्याकुल होता है तो कबीर की दो पंक्तियाँ मन ही मन दोहरा लेता हूँ -

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घ ा, ऋतु आये, फल होय।।

या फिर सुबह के नाश्ते में ब्रेड पर मक्खन लगाते-लगाते, भगवान श्रीकृष्ण यूँ ही याद आ जाते हैं -

मैया मोरी, मैं नहीं माखन खायो. . . .

और ऐसी कौन-सी गाँधी जयंती बीतती है जब मैं, रघुपति राघव राजा राम नहीं गुनगुनाता?

अपने देश, अपने धर्म और अपने आप से जु े रहने का इससे सरल तरीका और क्या हो सकता है? और मैं यह सब कर सकता हूँ क्योंकि मुझे हिन्दी पढ़नी-लिखनी आती है।

यदि हिंदी हमें पिछली कुछ शताब्दियों के साहित्य से जो ती हैं तो देवनागरी तो देवों की लिपि है। भारत से देवनागरी का सम्बन्ध तो हज़ारों वर्षों का है। संस्कृत में रचा गया सारा साहित्य देवनागरी के माध्यम से ही तो पाया जा सकता है। गीता का कर्म सिद्धांत हो या आयुर्वेद का स्वास्थ्य और चिकित्सा संबंधी ज्ञान। जो बच्चा देवनागरी पढ़ना नहीं सीखेगा, वह कालिदास के नाटकों की ओर कैसे आकृष्ट हो पायेगा। रमेश बाबू मानते तो हैं कि अपनी संस्कृति से जु े रहना आवश्यक है, पर गीता, आयुर्वेद और कालिदास को हटा दें, तो संस्कृति के नाम पर बचा ही क्या?

रमेश बाबू अपने बच्चों को इस सुख से दूर क्यों रखना चाहते हैं? पर लेक्चर पिलाने से कुछ नहीं होता। रमेश बाबू जब तक स्वयं इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचेंगे, तब तक मेरे कुछ भी कहने-सुनने से कुछ नहीं होगा। तो प्रवचन की जगह, मैंने उनके सामने एक छोटा-सा प्रश्न रखा।

'रमेश बाबू, आप अपने बच्चों को हिन्दी क्यों सिखाना चाहते हैं?'

'कैसी बातें करते हो भई ! तुम्हें बताया तो, लैनग्विज़ और कल्चर से जु े रहना बहुत जरूरी है। बच्चे हिंदी नहीं सीखेंगे तो फिर देसी फ़िल्में कैसे देख पाएँगे? सब-टाइटल पढ़ कर कोशिश तो करते रहते हैं, पर डायलौग समझ ही न आए तो फ़िल्म का आधा तो मज़ा ही चला जाता है। उन्हें हिंदी न आई तो वो हिंदी फ़िल्में देखनी छो देंगे।'

मेरा लंबा-चौ ा भाषण धरा का धरा रह गया। मैं नासमझ, अकारण ही कालिदास और कबीर की चिन्ता करता रहा - यहाँ तो गोविन्दा और शाहरुख खान की रोज़ी रोटी ख़तरे में है....

महिमा नामों की!

भुवनेश्वरी पाण्डे

शान्ता कभी शान्त न रहती
सरला सिर से पाँव फैशन में डूबी
मोहिनी पति को न मोह पाई
माया पूरा जग छो आई
मीना मीनता पर उतर आई
कांता ने कभी कांति न पाई
सरस्वती कभी विद्यालय न गई
लक्ष्मी घर-घर झाड़ू मार आई
सलोनी कभी किसी को न भाई
सोनिया अपने रूप को पछताई
श्यामा कभी श्याम तक न पहुँची
रूपा पे रूप ही न चढ़ा कभी
गोपी कभी रास में न आई
तृप्ता कभी तृप्त न हो पाई
आशा ने बाँटी सबको निराशा
कल्पना ने किया अकल्पनीय तमाशा
नीति ने हमेशा जो` अनैतिक नाते
प्रीति सदा प्रीति को तरसी
दीपा के घर न कोई दीप जला
मीता को कोई मीत न मिला
ऊषा को देख उदासी छाई
निशा ने हरदम दीवाली मनाई
साधना दिन-रात मचला करती
कामना किसी की कामना न बनी
पुष्पा के घर पुष्प न उगा कभी
कोमल ने विशाल पर्वताकार देह पाई
गीत कभी संगीत के पास न फटकी
कमल ने कमल की महिमा न जानी
सुमन कठोर हृदया ही बनी रही
नीरा का मन तरल न हुआ कभी
इस जग में अब तक भाई
कौन समझ पाया महिमा नामों की

थो ी सी देर

सुधा गोयल

'राम-राम रामधन काका' - दोनों हाथ जो दिये मेघा ने। काका को देख कर मेघा के चेहरे पर खुशी नाच उठी।

'सुखी रहो बिटिया। कैसी हो?'

'अच्छी हूँ काका, आपके सामने तो ख ी हूँ' - हँस प ी मेघा।

'हाँ, वही तो मैं देख रहा हूँ। क्या बढ़िया कोठी है। देख कर आँखें जु ा गईं। अरे बिटिया, बाहर जो चौकीदार ख ा है, अन्दर ही न आने दे रहा था। मैंने भी क क कर कहा - 'तुम हमें जानत न हो, हम साहब की ससुराल से आए हैं। सो बिटिया वो हमें नीचे से ऊपर तक देखने लगा। हमें फिर जोश आ गया - अबे ऐसे का देखत है। कभी आदमी नाहीं देखा। जा म्हारी मेघा बिटिया को बुला ला और तभी आवाज़ सुन कर तू बाहर निकल आई। ससुरा अन्दर भी आने देता या बाहर से ही लौट जाना प ता' - कहते-कहते काका ने अपने दोनों पैर सोफे पर रख दिये।

परदे के पीछे ख े राही और गौरा ने देखा तो हँस प े और बोले -'स्टुपिड, पता नहीं मम्मा ऐसे लोगों को कैसे सह लेती हैं। ये नहीं कि बाहर से विदा कर दें। यहाँ ड्राइंग-रूम में लाकर बिठाया है सारा कालीन जूतों से गंदा कर दिया है। राही, उसके पैर देख कितने गंदे हैं और सोफे पर रखे बैठा है। मम्मा कुछ भी नहीं कह रहीं बल्कि हँस-हँसकर बातें कर रही हैं। मैं ही जाकर हटा देती हूँ। यदि पापा ने देख लिया तो कितना गुस्सा करेंगे।'

राही ने गौरा को कुछ भी करने से रोक दिया - 'इस व्यक्ति के जाने के बाद मम्मा से बात करेंगे। अरे हाँ, गौरा तूने इस आदमी के सिर पर बँधा इतना भारी कप ा देखा। क्या कहते हैं इसे?'

'पता नहीं भैया, मम्मा से पूछूँगी। इस समय चल कर वीडियो गेम खेलते हैं। कहीं मम्मा ने हमें यहाँ देख लिया तो डाँट प ेगी।' दोनों अपने कमरे में जाकर खेलने लगे।

इधर-उधर चोर नज़र से देख मेघा ने पूछा - 'कैसी हैं माँ? कुछ कहा उन्होंने?'

'हाँ बिटिया, हालत ठीक नहीं है तुम्हारी माँ की। तुमसे मिलने को त प रही है। तुम्हारे अलावा उनका है ही कौन? श्रवण विदेश गया तो वहीं का हो कर रह गया। थो ा टैम निकाल कर माँ से मिल लो। ये चिट्ठी दी है।'

मेघा ने चिट्ठी ले कर जल्दी-जल्दी पढ़ी। आँखों से गंगा-जमुना बहने लगी।

'न रो बिटिया, माँ का दर्द बेटी ही समझ सकती है।'

'मैं जल्दी ही आऊँगी काका, माँ को बोल देना' - और अन्दर जा आलमारी खोल अपने पर्स से दो हजार रूपए निकाल एक लिफाफे में डाले, जल्दी-जल्दी दो-चार पंक्तियाँ लिखीं, पत्र बंद कर काका को थमा दिया - 'काका ये चिट्ठी माँ को दे देना।'

'अच्छा बिटिया' - कहकर काका ने चिट्ठी जेब में रख ली और एक थैला देकर बोले - 'ये सामान तुम्हारे लिए भेजा है।'

मेघा ने थैला पक ा। बिना देखे ही अंदर स्टोर की आलमारी में रखते समय ध्यान आया कि इतनी देर हो गई काका को अभी तक जलपान भी नहीं कराया। क्या सोचते होंगे। मंगला को आवाज़ लगाकर जलपान मँगाना उचित नहीं लगा। काका को देख कर वह भी हँसेगी। स्वयं ही प्लेट में तले काजू, सोन हलवा, मठरी और चाय ट्रे में रख कर काका के पास पहुँची।

'काका, थो ा जलपान कर लो। मैं तो माँ की बातों में भूल ही गई थी'

'अरे कहाँ भूली बिटिया, सब तो याद है' - और काका ने पूरी प्लेटें साफ कर एक लम्बी-सी डकार ली। मेघा ने फिर चारों तरफ देखा, कोई सुन या देख तो नहीं रहा। सामने दीवार घ ी पर नज़र डाली। अक्षय के आने में आधा घंटा है। तब तक काका को भेज देना चाहिये। अक्षय तो एक पल को भी सहन नहीं करेंगे। माँ से हट कर मेघा का ध्यान अक्षय की ओर घूम गया। वह ख़ामोश हो गई।

'जमाई बाबू और बच्चे नहीं दीख रहे बिटिया?'

'काका, बच्चे वीडियो लायब्रेरी गये हैं और आपके जमाई बाबू का कोई ठिकाना नहीं कब लौटें' - साफ झूठ बोल गई मेघा। यदि कहे कि अक्षय आधा घंटा बाद लौटकर आ जाएँगे तो काका बिना मिले नहीं जाएँगे। वह जानती है कि अक्षय काका का सम्मान करने की जगह अपमानित ही करेंगे। साथ ही दो-चार जली-कटी उसे भी सुना देंगे।

'जमाई बाबू का काम ठीक-ठाक चल रहा है न? इत्ती ब ी कोठी देख कर आँखें जु ा गईं। भौजी को बोलूँगा कि बिटिया स्वर्ग में रह रही है।'

'हाँ काका' - और खो गई मेघा अपने स्वर्ग की चहारदीवारी में।

'बिटिया भौजी को इहाँ बुला लो। जी जायेगी थो े दिन। वाँ अकेले प े-प े रोती रहती है।'

'हाँ काका, मैं आऊँगी और माँ को साथ ले आऊँगी। आप माँ को बोल देना।'

'अच्छा बिटिया, अब हम चलें, शहर में एक-आध काम भी है।'

काका से पीछा छु ाने के लिए मेघा ने जल्दी से हाथ जो दिए। चाहती तो लंच के लिए काका को रोक सकती थी, लेकिन अपने ही घर में उसे ऐसा अधिकार नहीं है। यह घर उसका कहाँ है, यह तो अक्षय का है।

काका को जल्दी-जल्दी बाहर के दरवाज़े तक छो आई। उनसे दुबारा आने का आग्रह भी नहीं किया। कितनी मज़बूर है मेघा ! कौन समझ सकता है उसे? जल्दी से अंदर पहुँच कर स्वयं ड्राइंग-रूम की सफाई की। सबकुछ यथावत् किया। जूठे बर्तन उठाकर सिंक में डाले। एक नज़र अपनी सूरत पर डाली। घ ी की सुइयाँ तेजी से आगे बढ़ रही थीं। अक्षय और उसकी दूरी मात्र दस मिनट की बची थी। इतने में हौ हाँफ गई मेघा। एक गिलास ठंडा पानी पिया और धम्म से सोफे पर आँखें बन्द कर बैठ गई जैसे मीलों दूर का सफ़र तय करके आई हो।

कितनी त पी है माँ से मिलने के लिए, लेकिन कैसे जाए? अक्षय तो सबकुछ पैसे की तराज़ू में तौलने लगे हैं। माँ बीते समय की गँवार औरत हैं। उस गँवार औरत की बेटी को अपनी पत्नी का दर्जा देकर उस पर कम एहसान नहीं किया है जो उसकी माँ को भी यहाँ लाकर रख ले। उसने माँ की चिट्ठी निकाल कर फिर पढ़ी। माँ ने लिखा था - घर गिर गया है। चार क यों पर आधी छत रुकी है। पता नहीं वह भी कब हवा के झोकों से गिर जाये। श्रवण का खत आये तो तू उसे लिख देना। अपने घर की छत तो डलवा दे। तू ही एक बार आ जाती तो आँखें जु ा जातीं। तेरे लिए थो ी-सी मूँगफली और गज्जक भेज रही हूँ। बहुत पसंद है तुझे।'

पत्र को कई बार पढ़ा। माँ का प्यार स्टोर की आलमारी में छुपाकर रख आई थी। अभी तक देखने का भी समय नहीं मिला था। सबके सो जाने पर इत्मीनान से देखूँगी-चखूँगी। माँ उसे अभी तक नहीं भूली। वह माँ को भूल गई है। माँ के प्यार में कोई दिखावा या मिलावट नहीं है। उसी के लिए बंधन क्यों है? वह माँ से मिलने क्यों नहीं जा सकती? न जाएँ अक्षय और बच्चे, पर वह तो जा सकती है।

श्रवण को क्या कहेगी माँ के घर के लिए? क्या श्रवण वहाँ से रुपए भेजेगा या आकर रहेगा। माँ ही उसे याद करती रहती है, उसने माँ को कभी याद नहीं किया। तभी एक विचार कौंधा मेघा के मन में - भैया के नाम से माँ को रुपए भेज सकती है। माँ का घर सही करा सकती है। पचास हज़ार तो उसके अपने एकाउण्ट में हैं जिनके विषय में अक्षय को पता नहीं है।

सोचकर थो ी तसल्ली हुई उसे। याद आया - कैसी दीवानी थी मूँगफलियों की। पिताजी लाते और वह आधी तभी चट कर जाती। सारे घर में घूम-घूमकर खाती। माँ सफाई करती जातीं और ब ब ाती जातीं - कब सुधरेगी मेघा? क्या पराये घर जाकर भी ऐसे ही करेगी।

वही मूँगफलियाँ उसे अब याद नहीं हैं, पर माँ को याद हैं। मूँगफली छीले भी एक जमाना हो गया है। उसका मन हुआ - भागकर स्टोर में जाए। मुट्ठी में मूँगफली भर ले और सारे घर में घूमते हुये छील-छीलकर खाये।

गु की गज्जक - उसके मुँह में पानी आ गया। मज़ाल जो एक दिन भी गज्जक उसे न मिले। नया गु आता और मेघा की गु -रोटी शुरू हो जाती। शादी के तुरंत बाद जा े आए। माँ को अपनी मेघा याद आई और पिताजी उसकी पसंद की चीज़ें लिए ससुराल आ पहुँचे। सास ननद ने जमकर हँसी उ ाई। उसका सारा उत्साह खतम हो गया -

'हमारी बहू तो पक्की देहातिन है। इसे मूँगफली पसंद है। हम काजू बेकार में ही मँगाते हैं।'

ननद ने कहा 'भाभी के मायके से मेवा आई है। ऐसी मेवा तो हमारे नौकर भी नहीं खाते।'

मेघा का रो-रोकर बुरा हाल। पिताजी तो ला -दुलारकर चले गये। सास ननद के ताने कौन सुने ! अक्षय लौटे शाम को। सास ने विष-भरा तीर मारा - 'अक्षय बेटा तेरे ससुर आये थे। थो फल-फूल लाये थे। मेघा अक्षय को भी खिलाना।'

मेघा को काटो तो खून नहीं। माँ-बाप के ला -प्यार का ये नतीज़ा निकलेगा उसने सोचा भी न था। अपमान और क्रोध में माँ को चिट्ठी लिखने बैठी - 'अपनी पसंद तुम्हारे ही द्वार पर छो आई माँ। अब क्या याद करना। यहाँ रह कर नई पसंद बनाऊँगी।' लिखने के बाद चिट्ठी भेजी नहीं। फा कर फेंक दी। माँ के प्यार-दुलार को क्यों दुख पहुँचाये? इसमें उनका क्या कसूर?

जब तक पिताजी रहे कुछ न कुछ उसकी पसंद का लेकर आते रहे। वह कमरे में छुपाकर रख देती। मौका देख स्वयं चख कर नौकरों में बाँट देती। एक बार अक्षय ने भी कहा -

'मेघा अपने पिताजी को बोलो यहाँ ये सब न लाएँ। वे पैसे खर्च करते हैं और यहाँ नौकरों को देना प ता है।'

मेघा ने लाख बार चाहा कि वो मना कर दे पर बात ज़ुबान से फूटी ही नहीं। वे तो यही समझते रहे कि मेघा की ससुराल वालों को ये सब चीज़ें पसंद हैं। माँ का भ्रम उसने आज तक नहीं तो ा। उसने मन ही मन निश्चय किया कि एक बार माँ से मिलने जाने के लिए अक्षय को मना ही लेगी।

आँखें लग गईं और स्वयं को उसने माँ के समीप पाया। 'मैं आ गई माँ। तुमने मुझे बहुत याद किया, मैंने भी याद किया।'

'सोते-सोते यह क्या माँ-माँ कर रही हो मेघा और आज यहाँ सोफे पर....'हैरान-परेशान अक्षय ने मेघा को हिलाया। मेघा एकदम चौंक उठी। ह ब ाकर उठ बैठी।

'बैठी रहो। उठो मत। आज मैं तुम्हें एक बात बताने वाला था। हम अगले सप्ताह तुम्हारे गाँव चल रहे हैं। वह तुम्हारी माँ वाला घर और आस-पास की ज़मीन खरीदनी है। वहाँ एक फैक्टरी डालनी है। तुम माँ से बात कर लेना।'

चौंक उठी मेघा - 'यह क्या कह रहे हो अक्षय? घर तुम्हें देकर माँ कहाँ जाएँगी? फिर माँ से बात क्या करनी। माँ तो तुम्हें घर ऐसे ही दे देंगी।'

'मुझे ऐसे ही किसी का एहसान नहीं लेना।'

'....तो तुम्हें किसी को बेघर करने का अधिकार किसने दिया?' पहली बार अक्षय से उलझ प ी मेघा। उसने कस कर मुट्ठी भींच लीं। जैसे कोई उसकी मुट्ठियों से मूँगफलियाँ और रेव याँ छीन रहा हो।

'मैं माँ को बेघर कहाँ कर रहा हूँ। उन पैसों से माँ को एक छोटा-सा घर दिला देंगे।'

'....और माँ क्या करेगी उन यादों का जो उस घर से जु ी हैं। कहाँ से लाएँगी वो प ोसी जो उनके सुख-दुख में साथ देते हैं। तुमने तो उनकी ओर कभी मु कर भी नहीं देखा। आज तुम्हारी फैक्टरी में माँ का घर आ आ गया। तुम तो माँ का मज़ाक उ ाते थे।' - जाने कब से भरा विष वमन होना चाहता था।

'भावुक नहीं व्यवहारिक बनो मेघा।'

'क्या मेरी माँ माँ नहीं है? क्या मैं राही-गौरा की माँ नहीं हूँ? माँ-बच्चों के रिश्तों में भी व्यवहारिकता? तुम कैसे इंसान हो अक्षय? कल अपने लाभ के लिए अपने बच्चों की भी बलि चढ़ा दोगे?'

'अपनी ज़ुबान को लगाम दो मेघा। बहुत हो चुका। मैं सुन रहा हूँ तो इसका मतलब यह नहीं हुआ कि तुम बहस करती जाओ। तुम अच्छी तरह जानती हो कि मुझे जो सही लगता है मैं करके रहता हूँ।'

'तो तुम कान खोलकर मेरी बात भी सुन लो। आज से पहले मैं तुम्हारी हर बात सिर झुकाकर सुनती आई। कभी विरोध नहीं किया, लेकिन अब माँ मेरे साथ रहेगी - माँ के सम्मान के साथ। उस घर का मोह न मुझे है न माँ को। तुम ये ही समझ लेना कि घर के रुपयों के बदले माँ को रोटी खिला रहे हो। वृद्धावस्था में हर बेटा-बेटी का फर्ज़ बनता है कि उनकी सेवा करे।'

अक्षय को लगा कि अब बातों से मेघा को फुसलाना आसान नहीं है। पानी जब चढ़ाव पर आता है सारे किनारों को ध्वंस कर देता है। मेघा का ये रूप इससे पहले अक्षय ने नहीं देखा था। हार कर उसने हथियार डाल दिये।

एक सप्ताह बाद मेघा खुशी-खुशी माँ को लेने जा रही है। उसने माँ के लिए एक अलग कमरा तैयार करा दिया है। राही और गौरा को भी गाँव देखने और अपनी नानी-माँ से मिलने की उत्सुकता है।

गा ी माँ के द्वार पर पहुँची। वहाँ गाँव वालों की भी लगी है। मेघा को देख कर रामधन काका आगे आये -

'थो ी-सी देर कर दी बिटिया। भौजी याद करते-करते चली गईं '....सुन कर मेघा को लगा माँ ने मर कर उसे शर्मिन्दगी से बचा लिया। कैसे कह पाती कि अपना एक-मात्र घर भी अपने दामाद को दे दो। और माँ की महानता पर, बेचारगी पर मेघा स्वयं को न रोक सकी और माँ से लिपट कर रोने लगी - 'माँ थो ा तो इन्तज़ार किया होता....।'

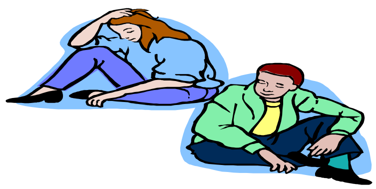

तुम

ज्योति कालरा 'उम्मीद'

मैं तो तरल थी
रंगहीन-सी
गंध भी कहाँ थी मुझमें
तुम्हारे हर साँचे में
सिमटने को तत्पर थी
पाकर नया आकार।

मैं तो जल थी
मेरी तुलना तुमने ही की थी
गंगा माँ की पवित्रता से।

आज मनचाहे रंग
मनभावन गंध
और ठोस आकार
पा चुकी हूँ मैं;
क्या तुम बदलोगे
अपने साँचे को
मेरे आकार-सा?

पाकिस्तान की उर्दू कविता में राम, कृष्ण और शिव

डा. हरिकृष्ण प्रसाद गुप्त 'अग्रहरि'

भारत के प ोसी देश पाकिस्तान में अनेक कविताओं में भारत की पौराणिक महत्ता की गूँज है। जहाँ यह जानकर सुखद आश्चर्य की अनुभूति होती है कि पाकिस्तान जैसे घोर हिन्दू विरोधी इस्लामी राष्ट्र में कई ऐसे कवि और लेखक हैं, जो लेखनी में हिन्दी शब्दों, गीतों, दोहों और पौराणिक ग्रन्थों के पात्रों द्वारा अपनी काव्य रचनाओं को पोषित करने में काफी समय से लगे हैं; वहीं इससे जु े कई महत्वपूर्ण सवाल भी हैं जो मन में उठते हैं। विशेष रूप से आज जब पूरे विश्व में ही नहीं, भारतीय उपमहाद्वीप में धर्म और साहित्य का जिस तेजी से राजनीतिकरण हुआ है। इस परिपेक्ष्य में साहित्य, साहित्यकार, कविता और भाषा तथा राजनीति भी, ये ऐसे पहलू हैं जो इस विषय के साथ जु े हुए हैं। इस विषय में विभिन्न पहलुओं पर नज़र डालने से पहले उन कवियों और कविताओं पर दृष्टि डाली जाये जो पाकिस्तानी उर्दू कविता में राम, कृष्ण और शिव को स्थान देकर एक नया आयाम जो ने का काम कर रहे हैं।

पहला नाम है, लुधियाना पंजाब में जन्में पाकिस्तानी मुहाजिर कवि 'सहबा अख्तर' का जो अपने को 'सहबा जी' कहलाना पसंद करते हैं। आपके कुछ दोहे इस प्रकार हैं -

'दिले हर कृष्ण ने अर्जुन को जीता।
वफ़ा हर दौर में लिखती है गीता।।
मिलेंगे अब भी बनवासी हजारों।
नहीं किसी राम के सीने में सीता।।
जन्म सागर में अमृत के बजाय।
जो शिव होता तो अब भी ज़हर पीता।।
पुजारी हूँ मै, जिस देवी का 'सहबा'।
उसी का दान है मेरी कविता।।'

जम्मू में जन्में और बरेली, अलीगढ़ में पले-बढ़े 'सहबाजी' के दोहे इस प्रकार हैं -

'उनके लिए हर भोर रुपहली साँझ सुनहरी आयें।
जिनके घर में लक्ष्मी नाचें दुर्गा दीप जलाएँ।।
बाँसुरी हाथ में पक े, मुँह पर छि के नीला रंग।
सब ही किशन बने तो राधा नाचे किसके संग।।
अन्तर्यामी के दर्शन को अन्तर ज्ञानी जाने
'सहबाजी' बनवास से कोई राम नहीं बन पाये'

इस प्रकार एक कवि 'इबने इनशा' भी हैं, जिनका वास्तविक नाम शेर मुहम्मद खान है। आपकी कविताओं में संत कबीर का स्पष्ट प्रभाव झलकता है और संत कबीर के अन्दाज़ में ही दोहे लिखते हैं। एक अन्य शैली के मुहाजिर कवि हैं जमालउद्दीन 'अली'। आप पाकिस्तानी राइटर्स गिल्ड के महामंत्री भी रह चुके हैं। आप संत कबीर की शैली में सूफ़ियाना दोहे लिखते हैं, और पाकिस्तान में काफी लोकप्रिय भी हैं।

इन कवियों और कविताओं को देख कर कई ऐसे सवाल हैं जो मन में उठते हैं और राजनीति, भाषा, साहित्य और साहित्यकार आदि पर सोचने को मजबूर करते हैं।

राजनीति या सत्ता का साहित्य से सम्बन्ध प्राचीनकाल से रहा है। सत्ता और राजनीतिज्ञों ने अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए साहित्य और साहित्यकार का हमेशा ही उपयोग किया है। वास्तव में देखा जाये तो साहित्य एक अस्त्र है। मानव समाज के निर्माण और रचना में साहित्य शक्तिशाली और प्रभावशाली अस्त्र का काम करता है। साहित्य की इस महत्ता से सभी युगों के सत्ताधारी वर्ग सदा परिचित रहे हैं और उन्होंने साहित्य के इस योगदान को सदैव मान्यता प्रदान की है। इसलिए सत्ता सदैव साहित्य को अपने प्रभाव-क्षेत्र के अन्तर्गत लाने के लिए प्रयत्नशील रही है। अपने अस्तित्व के लिए सत्ता का यह धर्म रहा है। सभी सत्ताएँ साहित्य को अपने हितों और स्वार्थों की पूर्ति में सहायक एवं पूरक मानती और इस्तेमाल करती आयी हैं। साहित्य में किसी राष्ट्र के प्राणों की वास्तविक ध कन और जन-आकांक्षाओं की वास्तविक ध कन और जन-आकांक्षाओं की प्रतिध्वनि सुनायी देती है। साहित्य किसी भी राष्ट्र की नब्ज़ है, जिसके ऊपर अँगुली रख कर राष्ट्रीय जन-जीवन की वास्तविकताओं को परखा जा सकता है। इसी कर्तव्यबोध का निर्वाह करते हुए जहाँ तुलसी, कबीर, भूषण आदि ने जन-मानस के बीच में रह कर अपनी रचनाधर्मिता का पालन किया, वहीं प्रेमचन्द, निराला और मुक्तिबोध आदि अनेक साहित्यकारों ने कभी अपने आत्म-सम्मान को टूटने नहीं दिया। इसलिए वे मिट गये पर टूटने से इंकार कर दिया। कुछ ऐसा ही हम इन पाकिस्तानी कवियों - 'सहबाजी', 'इबने इनशा' आदि में भी पाते हैं, जिन्होंने पाकिस्तानी सत्ता की घोर हिन्दू विरोधी और कट्टर इस्लामी नीति के आगे घुटने नहीं टेके हैं, और अपनी लेखनी के प्रति निष्ठावान हैं।

दोनों भाषाओं का व्याकरण

अब इस विषय के भाषा सम्बन्धी पहलू पर नज़र डालें तो हम पाएँगे कि वास्तव में उर्दू एक विशुद्ध भारतीय भाषा है। उसका जन्म एवं विकास भारत की भूमि पर ही हुआ है। किन्तु दुर्भाग्य से मुस्लिम सम्प्रदायवादियों और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के सम्मिलित षड्यंत्र से उर्दू की समस्या अत्यन्त जटिल और दुरूह बन गयी है।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि उर्दू का जन्म मुग़ल शासनकाल में ख ी बोली से हुआ था। हिन्दी और उर्दू वस्तुतः ख ी बोली की दो शाखाएँ हैं क्योंकि दोनों भाषाओं का मूल शब्द भण्डार एवं व्याकरण एक ही है। दोनों एक ही जाति एवं राष्ट्रीयता की भाषाएँ हैं। हिन्दी और उर्दू बोल-चाल की जन-भाषा के रूप में भी एक समान हैं, यद्यपि दोनों भाषाओं में लिपि, शब्द भण्डार और साहित्य की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर हैं।

ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए फूट, अलगाव और जातीय कटुता को बढ़ावा देने हेतु दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को जन्म दिया था जिसे मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने भी पोषित किया। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान दो भिन्न राष्ट्रीयताएँ बन गयीं। इस प्रकार उर्दू को मुसलमानों और हिन्दी को हिन्दुओं की भाषा के रूप में प्रचारित किया गया। पाकिस्तान की स्थापना के बाद उर्दू को मुसलिम सम्प्रदाय से अलग करके देखना असम्भव हो गया। फलतः स्वतंत्र भारत में बहुसंख्य सम्प्रदाय के हाथों में सत्ता आते ही प्रतिक्रिया स्वरूप उर्दू का विरोध और दमन का चक्र शुरू हो गया। इस प्रकार उर्दू अपनी जन्मभूमि में अधिकारहीन एवं विदेशी भाषा बन कर रह गयी। दोनों सम्प्रदाय जातीय एवं प्रादेशिक रूप में तथ्यहीन तर्कों एवं भ्रांतियों को पाले हुये हैं तथा गलत नीतियों का पोषण कर रहे हैं। साहित्य में भी हिन्दी-उर्दू के बनावटी अलगाव को कायम रखा जा रहा है।

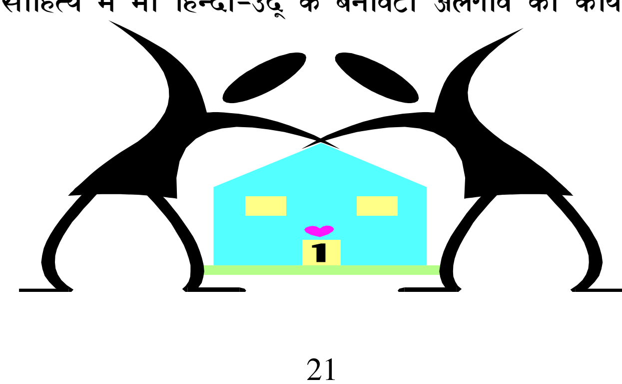

पता नहीं

पाराशर गौ

भारत में फैलते
भ्रष्टाचार पर
मैं था हैरान-परेशान
मेरा भारत
क्या से क्या हो गया।
हे भगवान !
क्या करूँ?
सोचता रहा,
कैसे होगा इसका निदान?

युक्ति सूझी
लगाया ब्रह्मा का ध्यान
ब्रह्मा प्रकट हुये
बोले
वत्स् ! मैं समझता हूँ
तेरे उर की पी ा
खैर, फिर भी बोल
क्या है तेरा प्रश्न?
करूँ मैं उसका निदान।

मैंने कहा
हे पितामह !
आप तो अजय, अमर हैं,
हैं न?
वो बोले, 'हाँ, हूँ'

मैंने कहा,
तो बताइये
मेरे भारत से
भ्रष्टाचार कब समाप्त होगा?
वो दिन, वो वार, वो समय बताएँ
जिसे सुन कर
मैं खुश हो जाऊँ।

ये सुनकर
ब्रह्मा लगे रोने,
बोले,
वत्स् पता नहीं;
तब तक तो
मैं भी मर जाऊँगा

रालू

डा. नीरजा माधव

जब से उसने प्रधानमंत्री द्वारा निजी क्षेत्रों में भी आरक्षण नीति के प्रस्ताव वाली ख़बर सुनी थी, उसके सपने सतरंगी और रातें रंगीन हो उठी थीं। अब उसे फिल्म इण्डस्ट्री में जाने से कोई रोक नहीं सकता। मिस वर्ल्ड तक रह चुकी बालीवुड की तमाम सुंदर-सुंदर नायिकाएँ कम से कम वस्त्रों में आकर उससे स्वप्न में लिपटने-चिपटने लगी थीं। गले में बाँहें डाले कोई रोमान्टिक गीत गाते-गाते उसके खुले मुँह से जब लार की एक अनवरत रेखा उसकी तकिया से होकर गाल का स्पर्श करती तो वह चौंककर स्वप्न से जाग जाता। सतरंगी सपने इधर-उधर हो जाते। वह अपनी धुआँई कोठरी की झिंलगा खटिया पर स्वयं को लेटा हुआ पाता। बग़ल में ज़मीन पर कथरी बिछा कर सोई उसकी पत्नी सुगनी के खर्राटे पूरी कोठरी में गूँज रहे होते। सा ी अस्त-व्यस्त हो टाँगों और वक्ष से बगावत कर रही होती। एक कोने में जलती ढिबरी का धुआँ आँखों को कड़ुवाहट से भर देता। पीली मद्धिम रोशनी में गाढ़ी नींद के कारण सुगनी के खुले मटमैले दाँत डरावने से प्रतीत होते। अपने भीगे गाल को गमछे से सुखाते हुए वह सुगनी पर गुर्रा उठता -

'उठ, उठ रे डाइन. . . .सोने का सहूर नहीं। रावण की तरह नाक बोला रही है आधी रात को। लग रहा है कान पर नगा ा बजा रही है।' ऐसा अक्सर ही होने लगा था अब। उसने अपने दोनों पैर चारपाई से नीचे लटका दिये थे। कमर वाला भाग झिंलगा खटिया में और धँस गया था। सुगनी को कुछ भी सुनाई नहीं प ा था।

'अरे हे कुम्भकरण की आजी, जरा ठीक से सोओ।' उसने अपने पैर से टिहोका दिया था।

'ऊँ ऽ ऽ', कहते हुए सुगनी ने दूसरी ओर करवट बदल ली थी। खर्राटे बंद हो गए थे कुछ क्षण के लिए। वह चारपाई से उठा था और लघुशंका के लिए बाहर निकला था।

बाहर शरद ऋतु का चन्द्रमा अपने पूरे स्वरूप के साथ खिल रहा था। हल्के कुहासे के बीच चारों तरफ एक स्तब्ध किन्तु खूबसूरत सन्नाटा फैला था। हल्की सिहरन उसकी नसों में दौ गई थी। ठंड की शुरुआत हो चुकी थी। उसने कंधे पर झूल रहे गमछे को गले के चारों ओर लपेट लिया था। कुछ देर पहले का स्वप्न आँखों के सामने पुनः नाच उठा। कितना सुन्दर दृश्य था। ऐसी ही धुआँ-धुँआ-सी रात और पहा ी के बीच मोहक-सा बगीचा। कैसे उससे लिपट-लिपटकर गा रही थी ऐश्वर्या। . . .जूही एक किनारे ख ी अपनी बारी की प्रतीक्षा में थी। अपने सीने पर कैसी हल्की गरमी महसूस कर रहा था वह उस समय। उसकी लघुशंका तीव्र हो उठी थी। वह जल्दी से मिट्टी के बा` के पिछवा` दीवार से सट कर बैठ गया था। वह सोच रहा था। नंगी टाँगों और ऊपर भी बहुत कम कप` पहने हँसती-खिलखिलाती किसी हीरोइन के साथ जब उसकी फोटो अखबार के पन्ने में छपेगी तो सुगनी तो जल मरेगी। कितना हाय-तोबा मचाएगी। समझाना मुश्किल हो जायेगा कि ये सब तो बस ऐक्टिंग है। असली जीवन की तो वही हीरोइन रहेगी। पर अकल कहाँ इतनी इन औरतों को। फोटो छपते ही गाँव से लेकर नैहर तक बवाल मचा देगी। चलो, इस तरह भी अपना प्रचार ही होगा। ऐसे तो लोग अखबार के उस पन्ने को अलग उठाकर रख देते हैं। एक दिन तो चाय की दुकान पर मास्टर साहब कह रहे थे कि अखबार वाले इन दो पन्नों की छपाई अन्य पन्नों से कितनी अच्छी करते हैं। दुकानदार हँसा था - हाँ कागज भी हीरो हीरोइन के गाल की तरह चिकना लगाते हैं। बाकी पन्ने तो बस गोबरहवा छाप. . . .।'

'लेकिन इन दो पन्नों को कौन पढ़ता ही है। रिक्शे, टैम्पो वाले भले इसमें छपी तस्वीर को निहारें लेकिन भला आदमी तो नहीं ही खोलता उसे।' मास्टर साहब ने उपेक्षा से कहा था।

'हुँ, बुढ़ौती में ऐसे ही सब भजन करने लगते हैं। फिल्में तो इन्हीं रिक्शे, टैम्पो वालों और गली-मोहल्लों के अवारा ल कों से हिट होती हैं। मास्टर को फिल्मी दुनिया की क्या जानकारी!'

सोचते हुए वह झटके से लघु-शंका करके उठा था। अपनी कोठरी की ओर लौटते हुए उसकी चाल थो ी गर्वीली हो उठी। उसने अपने बालों पर हाथ फिराते हुए जोर का झटका दिया। कनपटी के

ऊपर बिल्कुल छोटे कटे बाल ऊपर जाकर खूब लम्बे छो े गए थे ताकि झटकने पर वे उछल कर दोनों ओर बिखर जाएँ। बीच में सीधी माँग दिखाई प ती रहे। ऐसा ही हुआ था। आजकल यह स्टाइल फैशन में थी। एक फिल्म में शाहरुख खान ने ऐसे ही बाल कटवाये थे। अब तो यह स्टाइल हर रंग-रूप फैशनेबुल ल के की पसंद थी। उसने भी तो शहर के एक नामी सैलून में जाकर अपने बाल इस तरह कटवाये थे। अपने बाजार वाले पन्नालाल नाऊ से एक बार कटवाकर वह भोग चुका था। सिर के बीचोंबीच कटोरा रखकर अगल-बगल के सारे बालों को उसने कुतर डाला था। बहुत बुरा भी नहीं लग रहा था। उस समय तक यह फैशन बिल्कुल नया-नया था। कोई जानता तक न था। उसी ने तो अख़बार में छपी हीरो की फोटो पन्ना नाऊ को दिखायी थी और वैसा ही बाल काटने को कहा था।

उस समय वह दोबारा हाईस्कूल की परीक्षा देने वाला था। तीन साल पहले एक बार दे चुका था लेकिन चिट लिए दिए पक ा गया था। बस, तीन साल बाद फिर फार्म भर दिया। प्राइवेट होते हुए भी कृपा ही की थी प्रिंसिपल साहब ने कि उसे स्कूल आने देते थे। लेकिन उस दिन जब बाल कटा देखा तो उनका क्रोध भ क उठा था। ब े क क थे। उन्होंने प्रार्थना सभा में ही सबके सामने उसे बुलाया था और बाल पक कर हिलाते हुए पूछा था - 'पढ़ने आए हो या मजनूँगिरी करने?'

वह चुप रहा था लेकिन अंदर ही अंदर खौल उठा था।

'बोल, हीरो बनना है?' वे अब तक बाल पक हिला रहे थे।

डर के मारे उसने भीतर से जोर लगा कर बोलना चाहा था 'नहीं' लेकिन यह क्या हुआ था; उसके मुँह से हाँ निकला था और प्रार्थना सभा के लिए ख े सभी ल के हँस प े थे।

'अच्छा तो अब मेढकी भी चली नाल गढ़ाने?' प्रिंसिपल साहब ने उसकी पीठ पर एक धौल जमाते हुए कहा था - 'कल से सभी विद्यार्थियों की तरह छोटे-छोटे बाल कटवा कर नहीं आये तो इम्तहान में बैठने न दूँगा।'

'हुँ, किसको किताबी की ा बनना था। मैं तो वह बनना चाहता था जिसे दुनिया देखे सुनहरे पर्दे पर। तालियाँ बजें ढिशुम-ढिशुम पर। मोटर-साइकिल समेत छत फाँद कर इस पार आ ख ा हो और हीरोइन को खलनायक के चंगुल से छु ा कर अपने पीछे बैठा ले और गाना गाते हुए तुरंत हिमालय की गोद में पहुँच जाए। लेकिन छत से फाँदने की कल्पना मात्र से वह सिहर उठा। अगले ही क्षण उसने अपने को समझाया था - ये सब ख़तरनाक काम तो हीरो के डुप्लीकेट करते हैं। उसे नहीं करना प ेगा।'

लघुशंका कर लेने के बाद उसकी तबियत कुछ हल्की हो गई थी। अपनी झिंगली खटिया में लेटते हुए उसे फिल्मों का वह झूला याद आ गया था जिसमें नायिका अक्सर लेट कर झूलती है और नायक उसके अंग-प्रत्यंग चूमता हुआ गाना गाता है। भावविभोर नायिका आँखें बंद किये उस सुख को अपने भीतर उतारती है। उसे रोमांच हो आया। नसों में जैसे कुछ रेंगने-सा लगा था। उसने खर्राटे लेती सुगनी की ओर देखा था। न जाने कब चित्त लेट गई थी वह। सा ी टाँगों से ऊपर खिसक गई थी। उघ ी काली टाँगें बबूल के कुन्दे की तरह ढिबरी की रोशनी में दिखाई दे रही थीं जिन पर काले-काले रोएँ अँधेरे में भी साफ दिखाई दे रहे थे। उसने मुँह फेर लिया।

प्रिंसिपल साहब फिर याद आये थे।

हुँ, ब े क क बनते थे। कहते थे, 'फिल्मों में जाना आसान नहीं होता। बहुत संघर्ष करना प ता है तब कहीं जाकर एक हजार में से कोई एक हीरो बन पाता है।' अब पूछूँगा बच्चू से। बस जरा एक बार उसमें घुस लूँ। सबसे पहला आवेदन मैं भेजूँगा तो होने की गुंजाइश भी सौ प्रतिशत रहेगी। बाकी लोग तो जागते-जागते जागेंगे न? अभी तुरंत कहाँ सब उसमें भर्ती होने के लिए सोच लेंगे। मिलिट्री में ही भर्ती के लिए उसके साथ रामराज और कन्हैया भी गए थे। पर नाप-जोख के समय ही सबकी पैन्ट ढीली हो गई। भाग आये सब, जब सेनानायक ने पूछा कि देश के लिए मरने को तैयार हो?

'भाग सारे, नहीं तो जिनगी नहीं बचेगी। अपनी मजदूर मण्डिए भली।' सेनानायक के जरा-सा दूर खिसकते ही कन्हैया ने फुसफुसा कर कहा था। लघुशंका के बहाने सब भाग आये थे। वह अकेला क्या करता वहाँ? सो वह भी पीछे-पीछे चला आया। अपनी जान की परवाह भला किसको नहीं होगी?

दूसरे दिन मज़दूर मण्डी में सब इकट्ठा हुए तो पेट पकड़ कर हँसते-हँसते बुरा हाल हो गया था सबका। जिस ठेकेदार के साथ वो सब लोग लगे थे, उसने भी कुछ चुटकी ली। इन लोगों को अलग से सुरती खाने के लिए पैसा दिया। ठेकेदारों को भी तो नये-नये रंगरूट ही चाहिये ताकि जम कर खट सकें। बूढ़े पुरनियाँ मण्डी में बेचारे खड़े ताकते रह जाते हैं और ठेकेदार चुन-चुनकर जवान लेबर मिस्त्रियों को अपने साथ लेकर चले जाते हैं बिल्डिंग की ढलइया या प्लास्टर में। देर-सबेर भूला-भटका कोई ठेकेदार मण्डी में आता है तो मिलते हैं वही बूढ़े मज़दूर। उनकी मज़दूरी भी कम हो जाती है क्योंकि एक तो बूढ़े होते हैं दूसरे दिन चढ़ आया होता है। उतने पैसे कट जाते हैं। बचपन से ही दद्दा के साथ मज़दूर मण्डी जाते-जाते उसे उसका गुणा-गणित समझ में आ गया था। दद्दा तो उसे पढ़ाना चाहते थे पर उसका ही मन कभी नहीं लगा। स्कूल से भाग आता था वह। अढ़िया में गिट्टी मसाला ले कर ऊपर खड़े मिस्त्री को पकड़ाना उसे कलम पकड़ने से हल्का लगता था। ऊपर से मास्टर साहब की डाँट-फटकार। किस तरह से वह हाईस्कूल तक पहुँच पाया था।

उसने करवट बदल ली थी। पुराने बाध से बीनी गई खटिया चरमराई थी। उसकी आँखों में नींद नहीं थी। कई दिनों से वह ऐसे ही जागता रह जाता। नींद आती भी तो बालीवुड के अभिनेता, अभिनेत्रियाँ उसकी आँखों में छा जाते। अभिनेत्रियाँ तो सीने पर साँप की तरह लोटने लगतीं। रालू-रालू ...आई लव यू का सीत्कार उनके होठों से गूँजने लगता। वह नज़रें चुरा कर सुगनी की ओर देखता फिर डूब जाता उसी दुनिया में।

कई दिनों की माथा-पच्ची के बाद फिल्म इण्डस्ट्री के लिए वह अपना नाम रालू चुन पाया था। राम लुटावन से रालू, जैसे जय किशन से जैकी। धूम मचा देगा वह रालू नाम से। सबसे पहले वह चोपड़ा परिवार से मिलेगा। महाभारत बहुत चला था टी.वी. पर। सड़कें खाली हो जाती थीं उस समय। पता नहीं क्यों रामायण नहीं बनाया उन्होंने। उनसे रामायण बनाने के लिए जिद करेगा वह। नहीं होगा तो दो-चार एम.पी.,एम.एल.ए. से दबाव भी डलवाएगा। अब तो अधिकारपूर्वक वह बात कर सकता है। इन्कार नहीं कर पाएँगे वो। राम बनने की इच्छा भी कब से उसके मन में धरी की धरी रह गई थी। शहर से सटे अपने कस्बे में होने वाली रामलीला के मालिक से एक बार उसने स्वयं जाकर बात की थी - 'चौबे जी मुझे भी रामलीला करनी है।'

आस-पास खड़े लोग उसकी ओर देख हँस पड़े थे।

'हाँ-हाँ चौबे जी, रख लीजिये। बहुत मेक-अप नहीं करना होगा। बस पीताम्बर ओढ़ा दीजियेगा। बाकी तो दर्शक को दिखाई नहीं देगा गैस की रोशनी में।' पास खड़ा व्यक्ति मजाक में बोल पड़ा था।

'देखो बेटा, यह लीला एक विशेष प्रकार की होती है। सभी लोग उसमें भाग नहीं ले सकते। महीना भर पहले से पात्रों को नियम संयम से रहना होता है। तामसिक चीज़ नहीं खाते-पीते। अगली बार आना तो कोशिश करूँगा, सेना में रख दूँगा।'

हुँ, सेना में रख रहे थे चौबे जी। जब राम बनकर साक्षात पर्दे पर दिखाई पड़ूँगा तो हाथ जोड़ेंगे। कितने लोग तो रामायण देखते समय टी.वी. पर ही फूल-माला चढ़ा कर अगरबत्ती दिखाते थे। तब वह बहुत छोटा था। दद्दा का हाथ पकड़ कर बरखू लोहार के घर टी.वी. देखने जाया करता था। बड़े धनी थे बरखू लोहार, लेकिन जब से मुम्बई में खटाल खोल लिए तब से यहाँ से नाता ही टूट गया।

उसे नींद नहीं आ रही थी। बार-बार करवट बदलने से चारपाई की चरमराहट रात का सन्नाटा भंग कर रही थी। कई दिनों से वह मज़दूर मण्डी भी नहीं जा पाया था। पता नहीं क्यों उसे उस स्थान से अरुचि-सी हो गई थी। बग़ल के ओसारे में पड़ी चारपाई पर उसके पाँचों बच्चे आड़े-बेड़े सोये थे। पास ही दद्दा की भी खटिया पड़ी थी। कई दिनों से दद्दा उसे टोक भी रहे थे -

'क्या हुआ रे तुझको? मण्डी क्यों नहीं जाता?'

'ऐसे ही, मन नहीं करता।' वह बाल झटकते हुए बता देता। अन्दर की बात अन्दर ही रह जाती। ओठों से बाहर आने की हिम्मत न होती।

'मन तो ढोर होता है रे। मुँह उठाये चलता ही रहता है। पढ़ने-लिखने के दिन में भी मन नहीं किया और अब काम-काज के बखत भी नहीं कर रहा है। चार ठो बाल-बच्चों के मुँह में अन्न का दाना कैसे जायेगा?'

वह चुपचाप बाज़ार निकल जाता। समय आने पर दद्दा को स्वयं सब कुछ पता चल जायेगा। पहले से ही क्या बकना। उसकी आँखों का सपना और गहरा जाता। उसी सपने की क ी में उसने इस बार के उप-चुनाव में सत्ता पार्टी के अपने क्षेत्र के उम्मीदवार का दिन-रात जम कर प्रचार किया था। रात-रातभर जाग कर पोस्टर और बैनर चिपकाये थे। साइकिल में उनके चुनाव चिन्ह वाला झण्डा टाँग कर और सिर पर वैसी टोपी लगाये वह दिन-दिनभर चलता रहा था। जुलूस में नारा लगाते-लगाते गले की नसें खिंच जातीं और क ी धूप में उसका रंग और गहरा जाता। ओठों के दोनों किनारे झाग से भर जाते। आखिर नेता बन जाने के बाद अपनी बात भी तो संसद के भीतर तक यही नेता लोग पहुँचाते हैं। वायदे करेंगे, आश्वासन देंगे, तभी तो जनता उन्हें ऊँची कुर्सी तक पहुँचायेगी। वोटरों पर ही तो उनका सारा विश्वास और आस्था टिकी होती है। वह निष्ठापूर्वक जु ा था।

उसने चारपाई पर पुनः करवट बदली थी। सपनों के लिए सोना जरूरी था और सोने के लिए श्रम, जो आज कई दिनों से बंद था। उसने सुगनी को हिलाकर जगाया था। चारपाई की चरमराहट के साथ तैयार होने लगा था मज़दूर मण्डी के लिए एक और श्रमिक, सपने देखने वाला एक और वोटर।

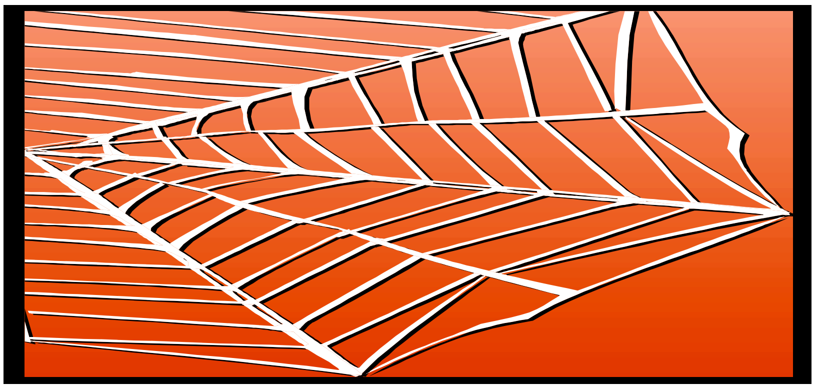

मेरा गाँव किधर है?

सरन घई

यहीं कहीं मेरा एक गाँव था,
क्यों भाईसाहब, आप बता सकते हैं, किधर हैं?
मेरे गाँव में वे सारे लोग थे, जो मेरे अपने थे,
और जो मेरे न थे, वे दूसरों के थे,
पर थे वो भी मेरे अपने,
क्योंकि थे वे इसी गाँव के,
आप बता सकते हैं भाईसाहब, वे किधर हैं?
मुझे याद है यहीं कहीं बहती थी
एक टूटी-फूटी नदिया,
यहीं पोखर पर
महादेवी की लछमा
बैठी नहाती थी,
यहीं कहीं घीसू,
चराता था बकरियाँ,
यहीं तो जन्मी थी
प्रेमचन्द की दो बैलों की कहानी,
यहीं तो थे गोबर, धनिया, हरसू और बूढ़ी नानी।

क्या आप बता सकते हैं भाईसाहब,
अपनी माँ पर जान दे देने वाला
श्रवण पुत्र-सा बनवारी किधर है?
कहाँ हैं पत्थरों भरी स कें,
धूल-धूसरित पगडंडियाँ,
कहाँ हैं धान, खेत, खलिहान?
कहाँ है वो तुक्क कवि महान,
जो देखता था मेरे गाँव में
सारा हिन्दुस्तान।
आप बता सकते हैं भाईसाहब,
मेरे गाँव का वो सूदखोर बेईमान किधर है?
मैं तो काफी साल पहले
शहर चला गया था।
आप बता सकते हैं भाईसाहब,
मेरा गाँव किधर है?

एक ही साँस में पूछ लिये ढेर सारे प्रश्न,
बहुत उतावले हो,
ठीक कहा
शहर से ही आये हो।
तो सुनो,
गाँव के गन्ने के खेतों की गर्मी,
और शहरों के फ्रिजों की ठंडक के बीच,
तुम्हारा यह गाँव,
डिस्ट्रिक्ट हैडक्वार्टर बन गया है।
डामर की हो गई हैं पत्थरों वाली स कें,
पगडंडियों वाली राहें
अब वीरान हो गई हैं।
और तुम्हारे वो सब अपने-बेगाने, जाने-अनजाने,
वोटरों की लिस्ट में टँगे,
अपने-अपने नियोजित परिवारों के साथ,
राशन की, तेल की कतारों में लगे हैं।
कुछ मर कर भी जिन्दा हैं, कुछ जिन्दा मर गये हैं,
कुछ फैक्ट्रियों में लगे हैं, कुछ दुकानों पर लगे हैं।
घीसू अब बनाता है बेकरी में डबलरोटी,
लछमा खाकी वर्दी की सरकार की छत्र-छाया में,
मनोरंजन महफिलें सजा रही है,
हरसू, गोबर, धनिया तो कब के गाँव छो चुके,
बूढ़ी नानी अभी भी चरखा चला रही है।
कवि तुक्क महान पागल हो गया है,
अभी तक गाँव को ही हिन्दुस्तान बता रहा है,
और वह माँ पर जान दे देने वाला श्रवण पुत्र-सा बनवारी,
माँ पर जायदाद का मुक़दमा चला रहा है।
किस्मत चमकी है तो सिर्फ़ उस सूदखोर बेईमान की,
इलेक्शन जीत कर संसद में गया है,
तुम्हारा गाँव अब यहाँ नहीं है भइया,

सुबह वाली गा ी से शहर गया है।

जीवन एक बहती नदिया

डो. सरला अग्रवाल

अपने कार्यालय से निकल कर कल्याणी सीधी अनुपम डिपार्टमेंटल स्टोर में घुस गई....ट्राली लेकर अपने हाथ में पक ी सूची के सामान उसमें डालती वह वहाँ सतर्कतापूर्वक घूम ही रही थी कि किसी ने पीछे से आकर उसकी आँखें मींच लीं। वह हतप्रभ-सी वहीं ख ी रह गई....

'अरे कौन है?' अनायास ही उसके मुख से निकल प ा। हृदय की ध कनें तेज हो उठीं। उसके दोनों हाथ, उसकी आँखें बन्द करने वाले हाथों के ऊपर जा पहुँचे। वह उन हाथों को आँखों से हटाने में जुट गये।

'कल्याणी'

'कौन?'

'अरे, भूल गई क्या हमें?....अचानक आँखों पर लगाया बन्धन छो ते हुए रूपा ने उसके समक्ष आते हुए पूछा....।

'रूपा तुम !' आश्चर्य में भर कर कल्याणी सब कुछ छो -छा कर रूपा के गले से जा लगी। हाय, कितने सालों के बाद आज मिली है....मैं तो तुझे याद कर-करके घुली जा रही हूँ।'

'चल हट ! घुलने के तो कोई लक्षण दिखाई नहीं दे रहे....बल्कि पहले से कहीं अधिक आश्वस्त, स्वस्थ और सुांदर लग रही है। अब कैसे हाल-चाल हैं? और आदित्य कहाँ हैं?'

'ऐसे ख े-ख े ही क्या सब बातें की जा सकेंगी? चल कहीं बैठते हैं।' कल्याणी ने जल्दी-जल्दी रैक्स से दो-चार आवश्यक वस्तुएँ और उठाकर अपनी ट्राली में डालीं तथा सारा सामान पैक करा कर मूल्य चुकाया। सामान के बैग को उठाती हुई वह रूपा का हाथ पक े, स क पार करती अपनी मारुति के पास जा पहुँची। चाबी लगा कर उसने गा ी खोली। हाथ का सामान पिछली सीट पर डाल कर अपनी बगल वाली सीट के द्वार को अनलॉक किया....

'आजा' कह कर वह बाहर ख ी रूपा के चेहरे को एकटक देखने लगी। आँखों में दुनियाँ-भर का आश्चर्य भरे रूपा ने गा ी का द्वार खोला और अन्दर सीट पर बैठ गई। ड्राइविंग सीट पर बैठी कल्याणी ने कार स्टार्ट कर दी।

'चल तुझे रामा पैलेस की शानदार कॉफी पिलाते हैं।'

'अरे, मुझे तो अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं आ रहा....डिपार्टमेण्टल स्टोर में मैंने तुझे जब देखा तो ब े ही डरते-सहमते हुए तेरी आँखें मींची थीं....लग रहा था कि कहीं गल्ती से किसी और की आँखें मींच लीं तो एक करारा झाप प ने वाला है....पर फिर भी स्वयं को रोक नहीं पाई। तू तो पहले से कहीं ज्यादा यंग लग रही है....क्या माज़रा है?'

'चल कर कहीं बैठते हैं यार....बहुत ही दिनों के बाद अपने मन की कहने के लिए कोई उपयुक्त साथी मिला है। तुम यहाँ ही हो या....'

'हमारा ट्रांसफर तो जयपुर हो गया था न? यहाँ तो मैं एक शादी के सिलसिले में आई हुई हूँ। तीन-चार दिन ही रहना है बस। यहाँ से गुज़र रही थी, तो तुझे इस स्टोर में घुसते देखा, बस पीछे-पीछे पहुँच गई। कुछ देर यूँ ही ख ी रही, लगा कि गलती कर रही हूँ....कहाँ वह रोई-रोई, दबी-भिंची, मज़बूर औरत....और कहाँ यह चुस्त चमकदार चेहरे वाली कॉनफिडेंट ल की ! पर मन था कि मानता ही न था। कहता था कि एक चांस तो ले ही ले। वही हाव-भाव, वही चाल-ढ़ाल, वही चेहरा-मोहरा !'

'तो तू झाप खाने के लिए तैयार थी' कल्याणी ने ठहाका लगाया।

'तेरी ख़ातिर !'

'सच ! मुझे भी तो सभी की बेहद याद आती है।'

'रेस्ट्राँ आ गया था। कल्याणी ने एक ओर गा ी पार्क की और फुर्ती से दौ कर रूपा की ओर का द्वार खोल कर उसे सस्नेह हाथ पक कर बाहर निकाला। दोनों रेस्ट्राँ के अंदर चल दीं। कोने की खाली टेबल पर वे दोनों जाकर बैठ गईं। कल्याणी ने बैरे को बुला कर दो कॉफी और एक प्लेट चीज़ पकौ` ऑर्डर कर दिये। फिर पानी पीते हुए रूपा की ओर देखा....

रूपा एकटक उसी की ओर देखे जा रही थी। झेंप कर कल्याणी ने सिर झुका लिया फिर तनिक नख़रे के साथ पूछा, 'ऐसे क्या देख रही है?'

'परिवर्तन'

'कैसा परिवर्तन?'

'कहाँ वह कल्याणी जिसे मैं एक प ोसिन के नाते रात-दिन देखा करती थी....आज से पाँच-छः वर्ष पूर्व....और कहाँ आज मेरे सामने बैठी ये कल्याणी जिसे मैं निहार रही हूँ। क्या समय था वह भी....संकोच तो हो ही रहा है, फिर भी पूछ रही हूँ कि आज तू अकेली कैसे घूम रही है? तेरा बेटा आदित्य और पति मदनमोहन कहाँ हैं?'

'आदित्य तो इस समय घर पर ही होगा। वह स्कूल से दोपहर के दो बजे वापस आ जाता है, सेंट जेवियर्स स्कूल में छठी कक्षा में पढ़ता है। उसके पिता अब हमारे बीच नहीं रहे। मैं तुम्हें अपने घर ही ले जाने की सोच रही थी, पर यही सोच कर वहाँ नहीं ले गई कि तुम्हारे मन में अनेक जिज्ञासाएँ तो होंगी ही, वहाँ पर वह यह सब बातें सुनेगा तो उसके मन को ठेस पहुँचेगी। तुम्हें मेरा यह सब बताना भी शायद उसे अच्छा न लगे। अब वह ब ा व समझदार जो हो गया है, मैं उसे डिस्टर्ब नहीं करना चाहती। अब तुम्हें घर ले चलती हूँ, चलोगी?'

'आज नहीं, फिर कभी आऊँगी, कल परसों में।'

'घर का पता तुम अपने पास रख लो रूपा....अब हमने घर बदल लिया है।' कह कर कल्याणी ने पर्स से अपना विज़िटिंग कार्ड निकाल कर रूपा के हाथों में रख दिया....रूपा ने कार्ड पढ़ा तो गश खा गई। कल्याणी एक ब` बैंक की प्रोबेशनरी ऑफिसर ! घर पर फोन भी ! उसके हाथ काँपने लगे....हाथ में पक ा कार्ड धुँधलाने लगा और नेत्रों के सम्मुख वह चित्र घूम गया जब एक दिन रोने-चीखने के तीव्र स्वर सुन कर वह और उसका पति गोविन्द अपने बराबर के फ्लैट में दौ कर गये थे। वहाँ का दृश्य देख कर वे दोनों सन्न-से रह गये थे। शराब में धुत्त मदनमोहन अपनी पत्नी को बुरी तरह पीट रहा था। लातों-घूँसों के साथ ही वह अपनी पैन्ट की बैल्ट निकाल कर उससे, उसकी पीठ, नितम्बों और बाँहों को छलनी किये दे रहा था। कल्याणी लगभग अर्द्धनग्न थी। उसकी पीठ से रुधिर बह रहा था। वह बुरी तरह डरी-सहमी हुई थी। रो-चींखकर उसका गला बैठ गया था। पलंग पर उसका दो-ढाई वर्षीय पुत्र सहमा-सा औंधा प ा जार-जार रो रहा था। आँसुओं और बराबर बहती नाक से उसका चेहरा तर था।

गोविन्द ने डपट कर ब ी तेजी से मदन के हाथ से बैल्ट खींच लिया और उसे एक ज़ोरदार, झन्नाटेदार तमाचा रसीद किया था....

'हरामज़ादे ! अपनी गऊ-सी बीबी को मारता है। चाण्डाल ! अभी पुलिस को बुला कर तुझे पक वाता हूँ। तूने अपनी ज़िन्दगी के साथ हमारी भी हराम कर रखी है। रात-दिन का झग ा-फसाद, मार-पीट, रोना-धोना सुन-सुनकर हम तो तंग आ गये हैं। अभी तुझे निकलवाता हूँ इस फ्लैट से... आज ही मकान-मालिक को फोन करता हैं। शराबी कहीं का। न रात देखता है न दिन, हर समय शराब के नशे में धुत्त रहता है।'

'रूपा, तुम बच्चे और कल्याणी को घर ले जाकर, हाथ-मुँह धुला के कुछ खिलाओ-पिलाओ.. मैं तब तक इसे थाने ले जाता हूँ।'

डर के मारे मदन गोविन्द के पैरों में प गया था। गोविन्द उस समय उसी नगर में अच्छी प्रशासनिक पोस्ट पर आसीन थे, यह उसे विदित था। वर्ना उसने कब किसी की बात सुनी या मानी थी। हृष्ट-पुष्ट गोविन्द के झन्नाटेदार तमाचे से उसका नशा उतर चुका था। वह स्वयं भी तो एक ब`

बैंक का जिम्मेदार अधिकारी था, पढ़ा-लिखा और समझदार नागरिक। पर शराब की लत ने उसे कहीं का भी नहीं छो ा था।

वह निम्न मध्य-वर्ग के परिवार से था। उसकी माँ ने पति की मृत्यु हो जाने के बाद ब` दुख झेले थे। उसे पीहर और ससुराल कहीं भी आश्रय नहीं मिला था। तब उसने लोगों के यहाँ बर्तन माँज-माँजकर अपने इकलौते बेटे का पालन-पोषण किया और सरकारी स्कूल में पढ़ा-लिखाकर इस ऊँचाई तक पहुँचाया था। उसकी शिक्षा और उसके उच्च पद के कारण ही उसका विवाह एक ब` परिवार की शिक्षित ल की के साथ हो सका था। पर उसके अन्दर बैठी हीन भावना ने उसे पनपने नहीं दिया। कल्याणी के आभिजात्य संस्कार, शिक्षा और रहन-सहन उसके नेत्रों में काँटे की भाँति चुभते। वह बात-बात पर कल्याणी को उसके आभिजात्य संस्कारों के लिए व्यंग्य वाणों से बींधता। पत्नी के हर क्रियाकलाप के आगे उसे अपना सबकुछ हल्का लगता। ऐश्वर्या राय जैसी उसकी नीली झील-सी ब ी-ब ी मद-भरी आँखें और श्वेत पंक्ति चमकाती, कॉलगेट का विज्ञापन करती, निश्छल मुस्कान देख कर उसे लगता कि वह उसकी हँसी उ ा रही है। घर आये उसके बैंक के सहकर्मियों के साथ स्वागत-सत्कार करते समय कल्याणी का निःसंकोच धाराप्रवाह अँग्रेजी में बोलना उसके अन्दर हीनता का तीक्ष्ण आभास कराता। उसे हर क्षण लगता कि उसे नीचा दिखाने के लिए ही वह ऐसा कर रही है... क्योंकि वह इतना लिख-पढ़ लेने पर भी अँग्रेजी का एक शब्द भी बोलने में असमर्थ था। वह जहाँ भी कल्याणी को लेकर जाता लोग कल्याणी की प्रशंसा करते और उसके व्यक्तित्व पर कोई न कोई तीखी टिप्पणी कर ही देते... 'ये मुँह और मसूर की दाल !' या 'यार ! बीबी तो कमाल की ले आया, ब ा ही भाग्यशाली है, मान गये।' अपनी हीन मानसिकता पर काबू पाने के लिए वह डटकर शराब पीता... और उस दिन पत्नी की अच्छी खबर लेता।

उस दिन रूपा कल्याणी और नन्हे आदित्य को अपने साथ अपने फ्लैट में ले आई थी। उनके हाथ-मुँह धुलाकर उसने दोनों को चाय-नाश्ता करवाया था। बस उस दिन से कल्याणी के साथ उसकी घनिष्ठता बढ़ती ही गई थी। दोपहर के समय वह कभी-कभी कल्याणी के पास जा बैठती। कल्याणी भी उसे अपने तन-मन की हर बात बता कर स्वयं को हल्का कर लेती। वहाँ रहते हुए अनेक बार ऐसा मौका आया था जब गोविन्द और उसे, कल्याणी को बचाने के लिए उनके घर जाना प ा था। बेहद क्रोधी और हर बात पर तुरन्त उलटकर प्रतिक्रिया करने का स्वाभाव था मदनमोहन का। दूसरे की बात वह कभी सुनता ही न था, बस हर बात पर अपनी-अपनी ही चलाये जाता।

मुश्किल से तीन वर्ष ही वे वहाँ उस फ्लैट में और रह पाये थे... पर उनके देखते-देखते पति-पत्नी का मन-मुटाव चरम सीमा तक पहुँच चुका था। 'मन-मुटाव' भी नहीं कहना चाहिए क्योंकि कल्याणी की तो कोई बिसात ही न थी उसके समक्ष। हर प्रकार से कल्याणी का वह शोषण ही करता रहा था। उससे हर समय अपनी खरीदी हुई दासी के समान व्यवहार करता। घर का पूरा काम उसी से करवाता। उसने घर में समाचार-पत्र तथा टी.वी. तक लाकर नहीं रखा कि कहीं वह देख, पढ़, समझ कर घर से भाग न जाये... या प्रतिवाद न करने लगे। रात को नियमित कार्य की भाँति पहले उसकी पिटाई करता... फिर दो-तीन घण्टे लगातार पैर और सारा जिस्म दबवाता और फिर अपनी हवस पूर्ण करके सो जाता। न कहीं साथ लेकर जाता और न ही किसी को घर में लाता। जिस दिन कोई भूले-भटके से आ जाता उस दिन समझो कल्याणी की अतिरिक्त पिटाई होती। कभी नोचा जाता तो कभी अर्द्धनग्न करके कुर्सी के अगले दो पायों के नीचे उसके दोनों हाथ दबा कर वह स्वयं कुर्सी पर चढ़ कर बैठ जाता। सिगरेट पर सिगरेट पीता और उसके मुँह पर धुआँ छो ता रहता... बीच-बीच में जली सिगरेट के अग्रभाग को उसके नग्न शरीर पर जहाँ-तहाँ छूकर जलाता रहता। शरीर पर होते कष्ट से जब उसकी आह या सिसकी निकलती तो वह एक निराले संतोष और आह्लाद से भर उठता। एक बार कल्याणी ने उसे स्वयं बताया था कि आरम्भ में वह लोक-लाज के भय से अपने होठों को सिये रहती थी, एक 'उफ्' भी मुँह से बाहर न निकलने देती। पर उसने देखा कि मदन एक के बाद एक नई-नई तरकीबें निकालकर उसे लगातार तब तक सताता ही रहता है जब तक कि उसकी आह और रोना न निकल जाये। वह उसे फूट-फूटकर रोने, और उससे अपने को बचाने की भीख माँगने पर मज़बूर कर देता। व्यथित होकर जब वह उससे अपने लिए गि गि ा-गि गि ाकर छो देने की भीख माँगने लगती, तब मदन के मुख पर एक अनिवर्चनीय तृप्ति का भाव उम प ता। उसके

होठों पर हल्की मुस्कान तिर आती और वह कहता, 'चल भाग, माफ किया तुझे....खबरदार जो सोई....पहले मेरे पैर दबा, चल।'

उनका बच्चा टुकुर-टुकुर ये सारे दृश्य देखा करता....बस यही दुख उस समय कल्याणी को हर समय सालता रहता था। रूपा, मेरे बच्चे पर इस सबका कितना बुरा प्रभाव प रहा है, पर मैं कुछ भी तो नहीं कर सकती....यह ज़ालिम तो उसे स्कूल भी भेजने को तैयार नहीं है। उसके पीछे मैं उसे पढ़ाती हूँ, चोरी-चोरी। कई बार मेरा मन होता है कि मैं आत्म-हत्या कर लूँ और इस अत्याचार से छुट्टी पा लूँ किन्तु आदित्य का ख़्याल आता है तो मैं अपने इस विचार को त्याग देती हूँ। इसका....इसका क्या है, यह तो दूसरी शादी कर लेगा और मेरे बेटे को अपने पास मेरी ही तरह नौकर बना कर रखेगा। कोई विश्वास कर सकता है कि एक पढ़ा-लिखा सभ्य दीखने वाला व्यक्ति इतना संगदिल और ज़ालिम हो सकता है? बताओ?' वह अक्सर इसीप्रकार की बातें किया करती थी....पर आज यह कैसी कायापलट हो गई। कल्याणी के मुख पर मुस्कान तो मैंने पहले कभी देखी ही नहीं थी। कैसी भयभीत, थकी-थकी, निढाल, रोई-रोई, व्यथित, शंकित-सी रहती थी। पर आज तो लग रहा है जैसे....बगिया में खिला, हँसता हुआ प्रातः का ताज़ा लाल गुलाब हो।

मन की गति भी कितनी तीव्र है, क्षण भर में ही न जाने कितना कुछ सोच लिया था उसने, और केवल सोचा ही नहीं था, मन की आँखों से आँखों के सम्मुख चलते वीडियो पर सारे दृश्य ही देख लिए थे। इन सब दृश्यों को उसने झटके से एक ओर किया और विज़िटिंग कार्ड देखती हुई प्रकट में बोली, 'अच्छा तो अब तुम नौकरी करने लगी हो कल्याणी....मिसेज़ कल्याणी मोहन !'

'हाँ, इनके न रहने के पश्चात्, इनके ही दफ्तर में मुझे नौकरी मिल गई है। पिछले दो-तीन वर्षों में मैंने बैंकिंग की सारी परीक्षाएँ पास कर ली हैं, इसलिए अब बैंक मैनेजर के पद पर प्रोन्नति भी हो गई है।'

'सच, यह तो सचमुच बहुत ही खुशी की बात है। मदन को क्या हुआ था? रूपा को लगा कि उसके मन में कल्याणी के प्रति ईर्ष्या भाव जाग उठा है। उसने अपने आप को समझाना चाहा था कि कल्याणी ने तो अपने वैवाहिक जीवन में कष्ट ही कष्ट भोगे थे....अब ब ी मुश्किल और अथक श्रम से उसे वह स्थान मिल पाया है जिसकी वह हक़दार है तो उसकी अच्छी सहेली होने के नाते उसे तो प्रसन्न ही होना चाहिये। 'क्या हुआ था मदन को?' उसने पुनः प्रश्न किया।

'हुआ तो कुछ भी नहीं। संडे था। दफ्तर के लोगों के साथ पिकनिक पर गये थे। वहाँ सबके साथ शराब पी। सब लोग नदी में नहाने लगे, ये भी साथ चल दिये, न जाने कैसे इनका पैर फिसला कि नदी के गहरे जल में जा प े। लाश भी ब ी खोज के बाद अगले दिन मिली। इनके विभाग के सभी लोग वहाँ पर थे रूपा। नहीं तो लोग इसी बात को लेकर हजार बातें बनाते और मुझे सूली पर लटकाते। क्यों है न? मैं तो सन्न रह गई थी।'

'सचमुच, बहुत दुख हो रहा है, ऐसा अंत?'

'हाँ, और क्या? चलो तुम अब मेरे साथ मेरे घर चलो रूपा, फिर तुम्हारा आना हो पाये या नहीं....मैं खुद ही कुछ देर बाद तुम्हें तुम्हारी ठहरने की जगह पहुँचा आऊँगी।' कहते हुये कल्याणी ने बैरे से बिल लेकर पेमेन्ट कर दिया और बाहर आकर गा ी खोलकर रूपा को जिद करके अपने साथ गा ी में बिठा ही लिया।

'तुमने अपना पहले वाला फ्लैट क्यों बदल लिया?' स्वयं को रोकना चाहते हुये भी रूपा के मुख से निकल ही प ा था। उसे लग रहा था कि अभी सीधे वहाँ ही तो जा रहे हैं, फिर पहले से ही ये सब बातें पूछने की आवश्यकता भी क्या थी?....पर मन ऐसा ही है....किसी के मुख से उसके दुख की बात सुनते हुये दुख और सहानुभूति होते हुए भी अंतर में कहीं कुछ संतोष-सा भी महसूस होता है। मन यह सोच कर आश्वस्त-सा होता है कि हम उससे अच्छी स्थिति में है। पर दूसरे के अपने से अधिक सुखी होने की बात सुनने पर मन में कहीं गहरे एक शूल-सा ग ने लगता है....कि हाय ! यह तो हमसे भी बाजी मार ले गया।

'कई कारण थे रूपा। पहला तो यही कि उससे जु ी हमारी यादें बेहद कटु और त्रासद हैं। उनको भुलाने की हर चन्द कोशिश रही मेरी ताकि मेरे बेटे पर इसका कोई मनोवैज्ञानिक प्रभाव न प े। दूसरे यह फ्लैट हमें अच्छा लगा, दफ्तर और आदित्य के स्कूल के भी पास ही है। तीसरे हम इसे खरीद सकते हैं। जीवन भर किराया भरते रहने की बजाय कार्यालय से कुछ लोन लेकर मैंने यह फ्लैट खरीदा है। मदन के जीवन बीमा तथा प्रोविडेंट फंड, ग्रैच्यूटी वगैरह का भी काफी रूपया मिला था, सो फ्लैट और कार दोनों ही ले लिये। बच्चे को भी स्कूल में दाखिल करा दिया। ईश्वर ने जितना दुख दिया था रूपा, उससे कहीं अधिक सुख अब मेरी झोली में डाल दिया है। रानी बन कर रहती हूँ मैं अब अपने घर की।'

'दूसरी शादी कर ले' रूपा ने जोर से प्रतिक्रिया दी।
'दूसरी शादी ! न बाबा न ! अब खाई सो खाई आगे राम दुहाई। जब मदन थे, तब मैं सोचती थी कि एक ओर शेर ख ा हो और दूसरी ओर पति मदन और कोई मुझसे पूछे कि दोनों में से तुझे एक को चुनना है. . . .किसे चुनेगी? तो मैं कहती शेर को। वह कम से कम एक बार ही चीर-फा कर खायेगा। मदन की तरह सारी ज़िन्दगी एक-एक बोटी रोज़ काट कर तो नहीं।'

'सच ही कहती है तू कल्याणी, पुरुष ने अपने झूठे दम्भ में नारी पर अत्याचार और शोषण करके अपना सम्मान स्वयं ही खोया है।'

'अच्छा, एक बात बता कल्याणी, मदन इतनी अच्छी बीबी पाकर भी इतनी शराब क्यों पीता था? वह तो सदा शराब पीकर ही घर में घुसता था। मैं यह बात सदैव सोचती रही हूँ।' रूपा ने पूछा।

'रूपा, नशा इन्सान तब करता है जब वह मानसिक स्तर पर वर्तमान में रहने में असहाय हो जाता है। नशा उसके भीतर एक शून्यता ले आता है, जो उसकी बेचैनी को कम करता है। मेरे परिवार और उसके परिवार के रहन-सहन और संस्कारों में ज़मीन-आसमान का अन्तर था। मेरे पिता ने सुशिक्षित, अच्छी नौकरी वाला ल का तो देखा पर उसके बैकग्राउन्ड, पृष्ठभूमि, उसके परिवार, संस्कारों पर ध्यान नहीं दिया। कहीं भी स्वयं को हमारे स्तर का न पाकर मदन का अहम् आहत होता था। बस ! नशा करके वह मुझे नहीं स्वयं को ही पीटता होता था रूपा। लोग इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को कभी समझ नहीं पाते। खैर, अब तो रात गई, बात गई, छो ो वह सब ! अब तो लगता है बहुत कुछ और भी है इस जहाँ में. . . .ये दुनिया महज़ गम-ही-गम नहीं है।'

गा ी रुक गई थी। रूपा ने कार की खि की से झाँककर देखा - बेहद खूबसूरत, प्यारा-सा एक घर. . . .जो अन्दर जाने पर भी उसे सचमुच का घर ही लगा था। प्यार की ऊष्मा से भरा-पूरा। कल्याणी और उसका घर ! उसे सब कुछ मौसम की तरह बदला-बदला-सा लग रहा था जैसे भयानक तपिश और उमस के पश्चात् अचानक मानसूनी फुहार हो. . . .फुहार नहीं बारिश की झ ।

इन्साँ हो, हर मुश्किल से....

मधुप शर्मा

इन्साँ हो, हर मुश्किल से टकराना होगा,
बीह वन में रस्ता नया बनाना होगा।

अपराधों, पाखंडों की अंधी गलियों में,
नई चेतना का संदीप जलाना होगा।

होती आज बुराई हावी अच्छाई पर,
प्रलय न आए यह अनुपात घटाना होगा।

जिधर देखिए काँटे ही काँटे उग आए,
इन राहों पर अब तो फूल खिलाना होगा।

कहीं दायरे, कुछ दीवारें रस्ता रोकें,
उन्हें तो कर, उन्हें फाँदकर जाना होगा।

तुम्हें देख गर मंज़िल आगे-आगे भागे,
हर प ाव पर साहस नया जुटाना होगा।

तेरे लिए शहीद हो गए जो सरहद पर,
उनके प्रति भी अपना फ़र्ज़ निभाना होगा।

अगर ज़रूरत आन प` तो प्राण गँवाकर,
हँसते-हँसते माँ का क़र्ज़ चुकाना होगा।

कैसे कह दूँ भँवरों से तुम गीत न गाओ,
कलियों के मन में तो प्यार जगाना होगा।

बार-बार मिलकर भी हम तो रहे वियोगी,
जनम-जनम का यह भुगतान चुकाना होगा।

शगुन की मेंहँदी

कमल कपूर

घर एक मीठी और मस्ती भरी गहमागहमी से भरा हुआ था। चप्पा-चप्पा रोशनियों से चमक रहा था और ज़र्रा-ज़र्रा देसी-विदेसी इत्र, परफ़्यूम और फूलों की महक से महक रहा था। इस भीनी महक में एक और खास महक भी शामिल थी और वह भी घुली मेंहँदी की महक जो शुभा ब` यतन से तैयार कर रही थी। सावन की कजरी गाते हुए, 'मेंहँदी लयाय दे पिया मोती झील से, जा के साइकिल से....।' मलमल के कप` से छनी मेंहँदी में कैरोसिन तेल की गंध को दबाने के लिए एक विशेष प्रकार की चार-पाँच बूँदें डाल कर अच्छी तरह फेंटा उन्होंने फिर मेंहँदी घोलने के बाद एक बताशा दबा दिया उसमें। इससे मेंहँदी चिपकी रहेगी फिर कैरोसिन तेल की गंध को दबाने के लिए एक विशेष प्रकार की सुगंधित ज ी-बूटी डाली उसमें, और मेंहँदी तैयार हो गई। वह मेंहँदी भी निराली थी और क्यों न होती? खास मेंहँदी के घर राजस्थान से मँगवाई थी उसने जो उसका मायका प्रदेश भी था और इसका महत्व और भी बढ़ गया था क्योंकि यह शुभा की इकलौती भावी पुत्र-वधु विभावरी यानी विभा के हाथों में जो रचने वाली थी। आज मेंहँदी की रात थी और विभा के शगुन की मेंहँदी जाने वाली थी। एक वात्सल्यमयी मुस्कान थिरक उठी शुभा के होंठों पर। अब वह चनाचूर गरम की थैली की तरह रंगारंग कोन बनाने की तैयारी कर रही थी कि रिश्ते की एक देवरानी मीना ने आकर पूछा।

'भाभी, वो वंदन का सेहरा और रंगी हुई पग ियाँ आ गई हैं। कहिए कहाँ रखवानी हैं?'

'ठहरो, मैं खुद ही रखवाती हूँ,' कह कर शुभा उठी तो उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया और वह सिर थाम के फिर से वहीं बैठ गई। दुपट्टे पर गोटा-किनारी टाँकती शुभा की सास ने देखा तो फौरन दुपट्टा एक ओर धर कर वह शुभा के पास चली आई और नेह से उसके सिर को सहलाती हुई बोली, 'अब ऊपर अपने कमरे में जाकर थो ा-सा आराम कर लो बेटा, नहीं तो बीमार हो जाओगी और ब ी मुश्किल हो जायेगी। अभी ये शैतान ल कियाँ वहाँ से लौट कर पूरी रात धमाल मचाने वाली हैं और कल का दिन तो बेहद व्यस्त है। जाओ बेटा, तनिक आराम कर लो।'

मेंहँदी से सने हाथ धुला कर मीना उसे उसके कमरे तक पहुँचा गई। रिलैक्सिंग मूड में पलकें मूँद कर लेटी शुभा, अपने बचपन में पहुँच गई। ....ये मेंहँदी....मेंहँदी के रंग बचपन से ही उसकी ज़िन्दगी में उमंग भरते रहे बल्कि मेंहँदी शब्द सुनते ही एक सुकोमल मखमली भावना मन को छू लेती। मेंहँदी वाले देश के सबसे ब` शहर जयपुर में एक पंजाबी परिवार में जन्म हुआ था उसका। ज्यादा क्या कहना, घर ही मेंहँदी की बाढ़ के घेरे में स्थित था उसका और सिर्फ़ उसका घर ही क्यों, तुलसी के बिरवों की तरह लगभग हर घर में मेंहँदी के बूटे या हेज़ थी। मई महीने में जब मेंहँदी के फूल खिलते तो उदार बयार उनकी खुशबू उन घरों में भी बाँट आती जहाँ ये फूल खिलना भूल जाते थे। वर्षा की रिमझिम बूँदों के साथ मेंहँदी के हरे-भरे पत्ते खिल कर महक उठते। होश सँभालते ही मेंहँदी का रंग और महक भाने लगी थी शुभा को। मेंहँदी की नयी, नाज़ुक, नर्म-नर्म पत्तियों को चुन-चुनकर तो ती थी वह। अपने जैसे ही शौकीन सखी-सहेलियों की नन्ही सेना, सहयोगी हाथों की तरह साथ होती थी, फिर माँ के सिल-बट्टे पर रग -रग कर खूब महीन पिसतीं वह पत्तियाँ। उस बात के लिए सैक ों बार झि कियाँ खाई थीं शुभा ने माँ से।

'कितनी बार समझाया है कि मेरे सिल-बट्टे को बख्श दो। मेंहँदी की गंध आने लगती है मसाले से।'

तो वह हँस कर ढिठाई से कहती, 'ओ मेरी भोली माँ, मेंहँदी की गंध नहीं सुगंध होती है, वह भी बढ़िया-सी....आह !'

फिर माँ ने नया सिल-बट्टा खरीद लिया और पुराने वाला शुभा के हवाले कर दिया, यह कह कर, 'लो, अब पीसो-रग ो मेंहँदी दिन-रात जितनी चाहो।'

उन दिनों मेंहँदी पाउडर या तो मिलते नहीं थे या उनका प्रचलन न के बराबर था, ठीक से नहीं जानती शुभा। खूब महीन पिसी मेंहँदी में झाड़ू का बारीक तिनका डुबो-डुबोकर आपस में एक-

दूसरे की नन्हीं हथेलियों पर मेंहँदी की चित्रकारी करतीं शुभा और उसकी सहेलियाँ। कभी अपनी-अपनी माँओं के हाथ थाम लेतीं, 'आप मेंहँदी लगवा लें, काम हम कर लेंगे' कहते हुए अपनी मेंहँदी-माँडणाँ कला का भरसक ज्ञान उन ममतामयी हथेलियों पर उतारने को जुट जातीं वे। उम्र के साथ-साथ शुभा का यह शौक भी बढ़ता गया। हर तीज-त्योहार के साथ 'मेंहँदी पर्व' भी धूमधाम से चलता। रक्षा-बंधन हो या भाई-दूज, हरियाली तीज हो या गणगौर, ब ी बूढ़ियाँ लगाएँ न लगाएँ, शुभा और उसकी सहेलियों की नन्हीं हथलियाँ मेंहँदी के रंगों से सबसे पहले रच जातीं और सुहाग पर्व की तो बात ही क्या? एक-एक का हाथ थाम कर शुभा पूछती, 'बोलो चाची क्या माँडूँ, नाचता मोर या कलश?' 'जीजी, आपके हाथों में चाँद-सितारे बनाऊँ या फूल? कमल का फूल बनाऊँ?' 'मौसी हो ! मौसा जी का नाम लिख दूँ आपके गोरे-गोरे हाथों में और मामी आपके हाथों में तो मैं गोल-गोल घेवर की छटा उकेरुँगी।'

बिना कहीं से कोई प्रशिक्षण लिये बचपन में ही सिद्वहस्त हो गई थी शुभा उस कला में। धीरे-धीरे मेंहँदी की पत्तियों का स्थान मेंहँदी पाउडर ने ले लिया। एक से एक ब्रांड खूबसूरत पॉलीपैक में आने लगे बज़ारों में। पत्तियाँ पीसने का झंझट छो शुभा ने भी मेंहँदी-पाउडर ही अपना लिया। पत्र-पत्रिकाओं में मेंहँदी से सम्बंधित कोई भी मैटर या टिप्स देखती, झट कैंची से काट कर कटिंग सहेज लेती . . . चाहे वह मेंहँदी के विषय में कोई नई तकनीक हो चाहे डिज़ाइन। युवा होने तक एक अच्छी-खासी फाइल तैयार हो चुकी थी शुभा के पास। यह शौक सिर्फ़ त्योहारों, सखी-सहेलियों, माँ-बहनों या मौसी-चाोचियों तक ही सीमित नहीं रहा, इसने व्यापक रूप धारण कर लिया। उसने मेंहँदी प्रतियोगिताओं में हिस्सा लेना शुरू किया और अनेक छोटे-छोटे पुरस्कार भी बटोरे। कॉलेज, किसी भी क्लब या संस्था में कभी भी कोई मेंहँदी माँडणा प्रतियोगिता होती तो वह झट पहुँच जाती और धीरे-धीरे प्रथम पुरस्कार पर एकाधिकार जमा लिया उसने। इसके अलावा नाते, रिश्तेदारों, मित्र-मंडली या फिर गली-मोहल्ले में कहीं भी ब्याह-शादी हो, मेंहँदी की रात शुभा के नाम की ही पुकार उठती चहुँ ओर। कई नाज़ुक, गोरी, साँवली-सलोनी हथेलियाँ 'पहले मैं', 'पहले मुझे' के गीत गाती हुई शुभा के सामने फैल जातीं। कई बार तो माँ को गर्व होता अपनी ला ली पर और कई बार वह गुस्सा करतीं, 'बस गप्पबाजी और मेंहँदी माडणाँ, ये ही दो काम आते हैं तुम्हें। न घर का काम और न ढंग से पढ़ाई-लिखाई, बस ये ही नहीं होते तुमसे।' प्रत्युत्तर में वह ल याते हुये बेला के फूलों वाली बेल की तरह माँ के गले से लिपट जाती, 'ओ माँ, आप हैं न घर का काम करने के लिए, मैं भी करुँगी सारे काम पर शादी के बाद।'

बचपन से यौवन तक सैक ों हाथों-हथेलियों में मेंहँदी के हरे-सुर्ख बेल-बूटे, चाँद-सूरज-तारे उकेरते-उकेरते आखिर शुभा के भी हाथों में मेहँदी रचने का वक्त आ ही गया। स्वर्ग से चुन कर . . . तय कर उसका प्रेम-दूत उसे मिल गया अपनी बेस्ट फ्रेन्ड कुमकुम के ब्याह में। गुजराती शैली का लहँगा-चुनरी पहने और सितारों से झिलमिलाती ओढ़नी ओढ़े ब पारम्परिक ढंग से तैयार हुई थी शुभा। कमर तक लहराती खजूरी चोटी पर मोगरे की शुभ्र कलियों की वेणी लगाये पूरी 'कयामत' लग रही थी वह। ऊपर से चू ी खनकाते हाथों में आधी कलाइयों तक पहुँची मयूर-मयूरी डिज़ाइन की मेंहँदी गज़ब ढा रही थी। दिल्ली से बारात में आये, जीजाजी यानी कुमकुम के पति के दोस्त शेखर पहली नज़र में ही फिदा हो गये उस पर। उन्होंने चुपके से उसे अपनी माँ को दिखा कर, पसंद करवा कर उनकी सहमति भी हासिल कर ली और बिना कोई छिछोरी हरकत किये अगले दिन माँ के साथ सीधे उसके घर पहुँच गये . . . उसका मेंहँदी रचा हाथ माँगने। शुभा की माँ हैरान थी और खुश भी कि जहाँ उन्हें ब ी बेटी आभा की शादी के लिए जूते-चप्पल ही नहीं ए याँ तक घिसनी प ीं तब कहीं जाकर एक साधारण-सा घर-वर जुट पाया, वहीं घर बैठे-बिठाये इतने ऊँचे और सम्पन्न घर का वर शुभा के लिए खुद आगे बढ़ कर रिश्ता माँगने चला आया। 'न' का तो सवाल ही नहीं उठता था। 'रोकने' की रस्म तो 'हाँ' के साथ तत्काल ही कर दी गई और ब्याह दो महीने बाद होना तय हुआ।

माँ की तैयारियाँ जोर-शोर से चल रही थीं, हालाँकि शेखर के परिवार की ओर से राई-रत्ती भी माँग नहीं रखी गई थी, फिर भी शुभा के माता-पिता कोई कोर-कसर नहीं छो ना चाहते थे। यही तो विडम्बना है भारतीय समाज की कि वर-पक्ष की रुचि चाहे दहेज़ में हो न हो वधु-पक्ष अपनी हैसियत से भी ज्यादा उछलेगा। शुभा की 'अपनी' तैयारियाँ अपने ढंग से चल रही थीं। मेंहँदी चढ़ने के

बाद आने वाले रंग के रूपहले सितारों ज` लहँगा-चुनरी और सोने के गहनों की जगह उजले धवल मोतियों के ज़ेवर बनवाये। बेले-चमेली की कलियों के मोहक, महकते गजरों का ऑर्डर बुक किया।

पार्लर का ज़माना नहीं था, सो पुरानी लाल हवेली के आऊट-हाउस में रहने वाली बूढ़ी सुंदरिया काकी को पटाया मेंहँदी लगवाने को, जो कभी राजघराने की रानी-महारानियों को मेंहँदी लगाया करती थीं। सहेलियाँ चुटकियाँ ले रही थीं, 'खुद अपने आप ही लगाना न अपने सुहाग की मेंहँदी।'

जीजा जी ने भी छे ा, 'भाई साली जी, तुम्हारी आभा दीदी तो कह रही थीं कि शुभा के ब्याह पर शुभा से ही मेंहँदी लगवाऊँगी मैं, तो मैं सोच रहा हूँ कि मैं भी एक हाथ में मेंहँदी लगवा ही लूँ तुमसे।'

मीठी छे छा और हास-परिहास के साथ वक्त गुज़रता गया और आख़िर दस दिन रह गए ब्याह को। माँ ने शेखर की माँ से पुछवाया, 'मेंहँदी की रात कितने मेहमान आएँगे शुभा के शगुन, मेंहँदी की पोटली और क्वारी धोती लेकर? हम उसी हिसाब से इंतज़ाम रखें।'

'माफ करना बहनजी, हमारे यहाँ तो मेंहँदी की रीत ही नहीं है। हमारे घर की बहू-बेटियाँ मेंहँदी लगाना तो दूर इसे छू भी नहीं सकतीं। हाँ, बेटी ब्याह कर ससुराल चली जाये तो वहाँ के रिवाज़ के अनुसार जो चाहे वह करे मगर बहू तो मेंहँदी नहीं लगा सकती। यह समझ लें कि मेंहँदी की रोक है हमारे खानदान में। हाँ, उबटन, तेल, क्वारी धोती और सिंगार पिटारी लेकर चार-पाँच लोग आएँगे, उनके लिए क्या खास इंतज़ाम करना।'

शुभा की माँ स्तब्ध ख ी सोच रही थीं कि ये खबर शुभा तक कैसे पहुँचाएँ? वह तो खासा हंगामा ख ा कर देगी। बचपन से मेंहँदी के पत्तों, रंगों, फूलों से खेल-खेलकर तो ब ी हुई है वह और अब अपने ब्याह में मेंहँदी नहीं लगा पायेगी और यहीं नहीं आगे भी कभी छू तक नहीं पायेगी वह मेंहँदी को। इसे ही कहते हैं तकदीर की हेरा-फेरी।

और जिस पल खबर मिली शुभा को उसने धरती तो क्या आसमान भी सिर पर उठा लिया। 'नहीं करना मुझे ब्याह वहाँ। अरे ! ये भी कोई बात है? मेंहँदी रचाने से भी भला कभी किसी का बुरा हो सकता है? रूढ़िवादी कहीं के। साफ मना कर दो कि शुभा नहीं करेगी ब्याह आपके यहाँ।'

'बच्चे मेरे, जरा सोच कर देखो। हम किस लायक थे? इतने सम्पन्न घर का इकलौता बेटा खुद चल कर आया तुम्हारा रिश्ता माँगने। बेटा, कहीं तो एडजस्ट करो। इतनी-सी बात के लिए चढ़ी बारात को घर से लौटा देना क्या ठीक है? माँ ने समझाया तो वह बिफर उठी।

'इतनी-सी बात? ये इतनी-सी बात है माँ? बिन मेंहँदी की दुल्हन मैंने आज तक नहीं देखी। क्या आप नहीं जानतीं कितनी हसरतें हैं मेरे मन में इस मेंहँदौ को ले कर? नहीं-नहीं मुझे नहीं करना ब्याह वहाँ।'

'बिटिया रानी, जरा अपने इस गरीब बाप की तरफ देखो। ब्याह से ऐन पहले रिश्ता टूट गया तो मैं मुँह छिपाने कहाँ जाऊँगा? आजकल अनब्याही ल की के लिए वर जुटाना मुश्किल है तो सगाई टूटने के बाद. . . . ? वह भी एक ऐसी बात को लेकर जिसके कोई खास मायने नहीं।' टूटे स्वर में कहा पापाजी ने।

'मायने हैं पापाजी, चलो मेरे शौक, मेरी हसरतों को भी नज़रअंदाज़ कर दिया जाये तो भी. . जरा सोचिये पापाजी कितने दकियानूसी ख़्याल हैं उनके. . . .मेंहँदी की रोक? अरे कल को अगर किसी मोटर-कार से टकराकर कोई मर जाये तो क्या उसका खानदान मोटर-कार में नहीं बैठेगा? हद है रूढ़िवादिता की। पापाजी मुझे नहीं जाना ऐसे अंधविश्वासियों के घर।'

'ऐसे कुबोल मत बोल बिटिया। न जाने किस घ ी ज़ुबान पर सरस्वती आन बैठती है और मुँह से निकली बात सच हो जाती है। मेरी ख़ातिर छो दे यह जिद्द बेटा।' पापाजी ने कातर स्वर में कहा तो शुभा पसीज गई। फिर उसने जिद्द तो नहीं की लेकिन दिल बुझ गया उसका। वह मेंहँदी क्यों नहीं लगायेगी, एक-एक को जवाब देते-देते वह थक भी गई थी और ऊब भी। उसने कहीं सुन रखा था कि कई बार ईश्वर इंसान से उसकी सबसे प्यारी चीज़ छीन लेते हैं। शुभा के साथ भी यही हुआ।

नौ फरवरी की सुनहरी गो-धूलि बेला में सप्तपदी का मुहूर्त था। अतिशय रूपवती दुल्हन बनी वह विवाह-मंडप में बैठी थी लेकिन उसके मन में कहीं यह कुंठा घर कर गई थी कि वह मुकम्मल

नहीं, अधूरी दुल्हन है। रह-रहकर एक टीस उठ रही थी मन में अपने कोरे-कोरे हाथों को देख कर। जो मान-सम्मान उसके मन में शेखर और सास-ससुर के लिए था वह धुँधला प गया था। लेकिन यह भावनाएँ अस्थाई थीं। जल्दी ही इन पर प्रीत का गाढ़ा रंग चढ़ गया।

ससुराल पहुँची तो शेखर, ब ी ननद शशि दीदी और सास-ससुर ने उसकी इतनी अच्छी अगवानी की, इतनी देख-भाल की और इतना निश्छल प्यार दिया उसे कि उसके सामने मेंहँदी क्या दुनिया के तमाम भौतिक सुखों के रंग फीके ही नहीं बेनूर लगने लगे। प्रीत-प्रेम के रंग में रँगी प्यार की पींगें भरते हुए पूरे आठ महीने गुज़र गए और आन पहुँचा सुहाग-पर्व करवाचौथ तो शुभा की सोई कसक भी जाग उठी। कितने ही हाथों को मेंहँदी रंगों से सजाया था उसने हर करवाचौथ पर। आभा दीदी की पहली करवाचौथ पर तो अपने भीतर का सारा हूनर आभा दीदी की गोरी-गुलाबी हथेलियों पर उतार दिया था उसने। और अब उसका अपना पहला 'सुहाग-पर्व'. . . ?

मम्मी जी 'सरगी' के लिए पान, फल, मिठाई, फेनियाँ और चू याँ लेने के लिए बाज़ार गई हुई थीं और शुभा टी.वी. के सामने बैठी हुई थी। करवाचौथ के उपलक्ष्य में दूरदर्शन मेंहँदी-गीत प्रसारित कर रहा था। नंदा के होंठ हिल रहे थे, 'मेंहँदी लगी मेरे हाथ रे. . . .' शुभा का जी खराब होने लगा कि कल उसके ससुराल के आँगन में ही पूजा होगी, सुहाग के थाल फेरे जाएँगें मेंहँदी रचे हाथों से, एक उसके ही हाथ सूने-कोरे होंगे। उसने उठ कर एक झटके से टी.वी. बंद कर दिया कि तभी डोर-बेल बजी।

राजस्थानी वेश-भूषा में अधे उम्र की एक महिला द्वार पर ख ी थी।

'देखो तो जरा बहूजी, यह पता यहीं का है न?' एक नन्हीं-सी पर्ची आगे बढ़ाती हुई वह बोली।

'ये तो हमारे घर का ही नम्बर है। कौन हैं आप? क्या काम है?'

'बहूजी, आपको मेंहँदी लगाने आई हूँ। आपकी सासू ने भेजा है।'

'क्यों जले पर नमक छि क रही हो बाई। इस घर में मेंहँदी लगाना तो दूर लाना भी मना है। आप जाएँ यहाँ से, मेरी सास ने देख लिया तो आफत ही आ जायेगी।'

'पता तो ये ही है. . . फिर?' उसके चेहरे पर परेशानी झलकने लगी थी।

'अब आप जाइये' कहकर शुभा दरवाज़ा बंद करने को हुई और 'वह' गेट खोल कर बाहर निकलने को, कि मम्मी जी आ गईं।

'क्या बात है लाखी बाई? वापिस क्यों जा रही हो?'

'आपकी बहूरानी तो गुस्सा हो रहीं हैं।'

'अरे ! आओ, आओ अन्दर आओ। मम्मी जी कह रही थीं और शुभा प्रस्तर प्रतिमा-सी ख ी देख-सोच रही थी कि यह क्या हो रहा है।

'लेकिन मम्मी जी. . . .' ब ी मुश्किल से बोल फूटे उसके कंठ से।

'शुभा, मैं घर में सबसे ब ी हूँ इस समय और यह नियम है कि घर का वरिष्ठतम् सदस्य पुराने नियमों को तो कर नये नियम लागू कर सकता है, वही मैं भी कर रही हूँ. . . . . मेंहँदी को वापिस इस घर में लाकर। वेरी सिम्पल।'

'आप रहने दें मम्मी जी, मुझे कोई फ़र्क नहीं प ता और मन में कोई वहम हो तो नई रीतें निभाने में डर भी लगता है।'

'कैसा वहम? कैसा डर? यह सब हमारे मन की कमज़ोरियाँ हैं बेटा। तुम्हारी तरह मैं भी बहुत शौकीन थी मेंहँदी लगाने की लेकिन मेरी सास ब ी कठोर और कट्टर रूढ़िवादी थीं। जब शेखर हुआ मैंने तभी फैसला कर लिया था कि इसकी दुल्हन को मेंहँदी के रंगों से महरूम नहीं रखूँगी।'

'मगर मम्मी जी, हमारे ब्याह के वक्त यह कदम क्यों नहीं उठाया आपने?'

'बेटा, कोई समाज, परिवार या व्यक्ति किसी भी परिवर्तन को इतनी आसानी से स्वीकर नहीं करता। उस समय मैं यह आवाज़ उठाती तो भरपूर आलोचना होती मेरी और ब्याह में भी विघ्न प ता। इसीलिए मैंने फैसला किया था कि तुम्हारे पहले करवाचौथ से ही इस रस्म को ज़िन्दा करूँगी। बेटा, हमें बेमानी-सी अंधी लीकों को गाढ़ा नहीं करना, उन्हें मिटाना है। लाओ अपना हाथ।'

शुभा मंत्र-मुग्ध-सी अपनी माँ से भी ज्यादा स्नेहिल सास की मंत्र-पूत वाणी को सुन-गुन-सी रही थी।

'बेटा, तुम्हें कोई आपत्ति हो तो शुरुआत मैं खुद अपने से ही करती हूँ।'

'नहीं-नहीं मम्मी जी, ये लीजिये' कहते हुये शुभा ने अपनी हथेली फैला दी।

मम्मी जी ने शंकर-पार्वती की युगल-मूर्त्ति के सामने मस्तक नवाया। 'हे चिर सुहागन गौरा माँ ! अपने मेंहँदी रचे हाथ इस बच्ची के सिर पर रखना। इसका सुहाग अचल रखना। मैं जिस रस्म को पुनर्जीवित कर रही हूँ, उसकी लाज रखना।' मम्मी जी ने प्रार्थना की।

लाखी बाई ने शुभा के गोरे-गुलाबी हाथ पर मेहँदी का पहला टिपका डाला तो मम्मी जी ने उसके आँचल में एक सौ एक रूपये बाँधते हुए कहा, 'यह तुम्हारा नेग है लाखी बाई। तय रकम से भी ज्यादा दूँगी पर मेरी शुभा के हाथों में पूरी सृष्टि उतार देना।'

'बिटिया, मैं तुम्हारे उनका नाम लिखूँगी फूलों-पत्तों में छुपा कर, रात तुम उन्हें ढूँढने को कहना।' लाखी बाई ने हँसते हुये कहा तो शुभा खिल गई।

'लाखी बाई, आपका पहरावा देख कर तो लगता ही नहीं आप इतनी साफ और मीठी ख ी बोली बोल लेती होंगी। आप हैं कहाँ की लाखी बाई?'

'बेटी, उदयपुर की हूँ मैं और उम्र बीत गई इस शहर में, जुबान तो बदलेगी ही? पर न पहनावे का मोह छो पाई और ना मेंहँदी माँडणे का।' किंचित उदास होते हुए लाखी बाई ने कहा।
उसी रात को शुभा के मेंहँदी रचे हाथ चूमते हुए शेखर ने कहा था, 'इन मेंहँदी रचे हाथों ने ही तो सबसे ज्यादा जादू किया था मुझ पर. . . .यह आज नसीब हुये हैं मुझे, शादी के पूरे आठ महीने बाद।'

बस पहल करने और छूट देने की देर थी, मेंहँदी को पूरे खानदान ने अपना लिया।

करवाचौथ के दस महीने बाद वंदन का जन्म हुआ. . . .उसी वंदन का ब्याह है और कई पीढ़ियों के बाद यह सुनहरा मौका वंदन के हिस्से ही आया है कि इस घर से पहली बार उसकी दुल्हन के लिए शगुन की मेंहँदी जा रही है।

इन मीठी यादों ने शुभा को स्वस्थ और ताज़ादम बना दिया था। 'अब उठो बहुत हो चुका आराम शुभा रानी, चल कर काम सँभालो' स्वयं से ही कह कर शुभा उठ ख ी हुई। सीढ़ियों में ही वैदेही से टकरा गई।

'ओ मम्मा ! मैं आपको ही बुलाने आ रही थी। मेंहँदी ले जाने की पूरी तैयारी हो चुकी है। आप जरा एक नज़र डाल लें कि सब ठीक है या नहीं।'

एक ब े से काँच के पारदर्शी क्रिस्टल बाउल में रूपहले, सुनहले और आकाशीय नीले, सरसों से पीले, सुर्ख़ लाल, सब्ज हरे तथा और भी रंगारंग मेंहँदी के कोन सजे धरे थे। मेवे, फल मिठाई नारियल के अलावा सदाबहार ताजे फूलों का ब ा-सा बुके और अत्यन्त सुन्दर पैकिंग में मेंहँदी रंग की जरी सिल्क और सुर्ख लाल रंग की मुकेश ज ी प्योर शिफ़ोन की सा ी एक नफ़ीस-सी केन की बास्केट में सजी रखी थी।

'बेटा विदू, यह मेंहँदी रंग की सा ी विभा को मेंहँदी के शगुन के वक्त पहनाना और मेंहदी रचाने से पहले उसके हाथ-पैरों में यह मेंहँदी का तेल जरूर लगा देना, इससे मेंहँदी अच्छी रचेगी। सुर्ख़ शिफ़ोन उसके घर वालों के हवाले करते हुए कहना कि मेंहँदी रंग चढ़ने के बाद विभा को यह सा ी पहनाएँ और वीडियो कवरेज़ जरूर लें। और मेंहँदी माँडणे के बीस मिनट बाद उस पर नींबू का रस लगा देना और विभा को कह देना कि मेंहँदी उतारने के तुरंत बाद हाथ मत धोये बल्कि सरसों का तेल लगाये, इससे मेंहँदी में बहुत चमक आ जायेगी।' शुभा ने हसरत से निर्देश दिये।

'मम्मा, आप भी न, इतनी महँगी जरी सिल्क पहन कर मेंहँदी लगवाएँगी भाभी? कोई दाग-धब्बा प गया तो?'

'तो यह उसकी खुशनसीबी होगी और हमारी भी।'

'हे माँ पार्वती, इस मेंहँदी ने मुझे भी अचल अहिवात दिया और मेरी बेटी-सी शुभा को भी। अब मेरी गु या-सी विभावरी के सुहाग को भी अचलता का वरदान देना। चोखा रंग चढ़ाना मेंहँदी का' मम्मी जी, यानी शुभा की सास ने पार्वती माँ की निराकार मूर्ति के समक्ष नमन करते हुए कहा।

चमचमाती हुई गा ियाँ वंदन की दुल्हन विभावरी के शगुन की मेंहँदी लेकर रवाना हुईं शान से। लाउड-स्पीकर पर पंजाबी लोक-गीत बज रहा था....'आ, नी, बन्नी, तेरे शगनां दी मेंहँदी, मेंहँदी दा रंग सुआ लाल, लाल मेरी बन ी दा....।'

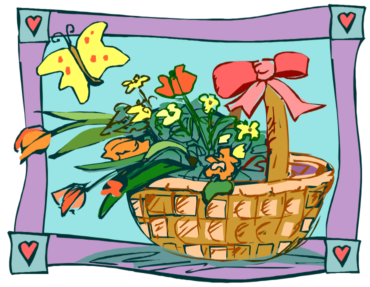

परिवर्तन

लता पाण्डेय

जब आकाश बदलने की
बातें मैं करती हूँ
मेरा मतलब
आकाश में छाये बादलों के
रंग बदलने से नहीं होता है

दो-चार क्रूर ग्रहों के उन्मूलन से
कुछ नहीं होगा
खासकर उस हालत में
जब सारी नभ-गंगा प्रदूषित हो
जिसमें यह प्रदूषण प्रवाह का नहीं
बल्कि उद्गम का है

इसलिए उस उद्गम को
समूल नष्ट करना होगा
जहाँ से निकलती हैं
कुत्सित और घिनौनी नभ-गंगाएँ

इसलिए जब मैं करती हूँ बात
आकाश बदलने की
मेरा मतलब
सारा आकाश बदलने से होता है

वापसी

भारती राजा

सूर्य की किरणों की रोशनी आँखों में प ते ही वह बिस्तर से ह ब ा कर उठ बैठी। बिस्तर से उठते ही उसकी नज़र घ ी की ओर गई। सात बजने को थे। उसने सोचा कि आज छुट्टी का दिन है इसलिए थो ी देर और सो लिया जाए, यह सोच कर उसने उठ कर खि की बंद की और फिर आकर लेट गई।

तभी घंटी की आवाज़ ने उसे चौंका दिया। उसने उठ कर दरवाज़ा खोला, देखा तो गुलाबो थी। 'अरे गुलाबो, आज इतनी सुबह !' वह बोली, 'मेमसाब, और एक घर में काम के लिए लगी हूँ तो सोचा कि जल्दी चली जाऊँ और ठंडे-ठंडे में टाइम पर काम पर से लौट आऊं।' यह कह कर गुलाबो किचन की ओर बढ़ गई। वह फिर आ कर पलंग पर लेट गई। लेकिन नींद अब आँखों से ओझल हो गई थी। उसने उठ कर ब्रश हाथ में लिया। तभी हवा के झोकों से एक तस्वीर उ कर उसके पैरों के पास आई। उसने तस्वीर उठाई। वह उसकी और ऋषि की तस्वीर थी। उसे याद हो आये वो दिन जब वह और ऋषि साथ-साथ थे। उस समय तो छुट्टी का दिन जैसे पंख लगा कर उ जाया करता था। दोनों सुबह देर तक सोते, फिर आराम से उठ कर चाय बनाते। चाय-नाश्ते के साथ अखबार पढ़ते। छुट्टी के दिन ऋषि उसे हर काम में मदद करते। वे किचन में भी उसका हाथ बटाते थे। साथ-साथ खाकर फिर सो जाते थे। दोपहर के बाद शापिंग पर निकलते। चाट खाते, फिर आइसक्रीम और ईवनिंग शो में पिक्चर। उसके बाद अच्छे से होटल में डिनर। वापस आकर थके-हारे एक-दूसरे की बाँहों में बेसुध सो जाते।

'बीबीजी चाय।'

अं. . . .गुलाबो की आवाज़ से उसकी तन्द्रा टूटी। उसने तस्वीर एक तरफ रखी, फिर एक लम्बी साँस ले कर , जाकर मुँह-हाथ धोया और चाय की चुस्कियाँ लेने लगी।

बाहर चहल-पहल शुरू हो गई थी। उसी ताल में गुलाबो की किचन में बर्तनों के साथ खट-पट भी जारी थी। वह खि की के पास आकर ख ी हो गई। बाहर ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी, लगता था कि तेज बारिश होने वाली थी। कुछ ही समय में बादलों की ग ग ाहट भी शुरू हो गई थी। काले-काले बादलों के बीच सूरज छिपता जा रहा था। देखते ही देखते अँधेरा छा गया। वह सोच रही थी कि उसके भीतर भी तो कुछ ऐसा ही अंधकार फैला हुआ है। वह सोच रही थी कि बारिश के समाप्त होते ही बादल छँट जाएँगे और सूरज फिर से सीना ताने रोशनी बिखेरता हुआ निकल आयेगा और यह अँधेरा समाप्त हो जायेगा लेकिन उसके जीवन में फैले इस अंधकार को दूर करने शायद रोशनी की एक भी किरण नहीं आयेगी। तभी बारिश की नन्हीं-नन्हीं बूँदें आकर उसे भिगोने लगीं तो वह खि की के पास से हट गई।

कुछ देर जोरों से पानी बरस कर थम चुका था। वह नहा-धोकर बालों को सँवार रही थी कि घंटी बजी। गुलाबो ने दरवाज़ा खोला, देखा शैल आई थी। उसे अच्छा लगा, सोचा चलो कुछ देर को तो दिल को सुकून मिलेगा।

'क्या हो रहा है भई. . . .ब े आराम से खुद को सँवारा जा रहा है। अरे, खुदा ने तो तुम्हें पहले से ही इतना हसीन बनाया है, सजने की कोई जरूरत नहीं।' शैल ने हँसते हुए कहा तो वह भी हँस प ी। उसने गुलाबो को आवाज़ लगाकर चाय-नाश्ता लाने को कहा। कुछ ही देर में गुलाबो चाय-नाश्ता ले आई। दोनों चाय पीते हुये बतियाती रहीं। शैल उसकी अंतरंग सहेली थी। दोनों एक ही कॉलेज में लेक्चरर थीं। हालाँकि दोनों के स्वाभाव में ज़मीन आसमान का अंतर था, फिर भी दोनों के बीच अच्छी दोस्ती थी। शैल बिंदास स्वाभाव की आधुनिक विचारों से ओत-प्रोत थी जबकि नीता भारतीय संस्कृति की मूरत थी। स्वाभाव से गम्भीर व भावुक।

नीता ने शैल को अपनी गुज़री ज़िन्दगी के बारे में सबकुछ बता दिया था। शैल उसे हमेशा समझाती कि जो कुछ हो गया उसे भूल जाये और फिर एक बार नये सिरे से अपना जीवन शुरू करे। लेकिन क्या इतना आसान है सबकुछ भूल पाना। उन दिनों को, उन रातों को जो उसने व ऋषि ने एक साथ गुज़ारी थीं। वे प्यार के सुनहरे पल जो उसकी झोली से एकाएक फिसल कर गिर प े थे। शैल अक्सर उससे कहती, 'अब वो ज़माना लद गया जब पुरुष स्त्री को अपने पैरों की जूती समझता था। आज नारी और पुरुष के अधिकार समान हैं। अगर पुरुष जो मन में आये कर सकता है तो नारी क्यों नहीं?'

पर उसे यह सब बातें अच्छी नहीं लगती थीं। वह तो अपनी पुरानी भारतीय संस्कृति व रीति-रिवाज़ों पर ही विश्वास रखती थी।

वह अपने ख़्यालों में खोई हुई थी कि शैल की आवाज़ से उसकी तंद्रा भंग हो गई, 'अरे भई, कहाँ खोई हुई हो तुम? चलो फटाफट तैयार हो जाओ, बाज़ार चलना है, कुछ शापिंग करनी है।' उसने मना किया कि उसकी इच्छा नहीं है लेकिन शैल नहीं मानी। वह ज़िद पर अ गई कि आज वह उसे लेकर ही जायेगी। मज़बूरन उसे हामी भरनी प ी।

तभी गुलाबो ने भीतर आते हुए पूछा, 'बीबीजी आज खाने में क्या बनेगा?' वह कुछ कहती इससे पहले ही शैल बोल प ी, 'गुलाबो आज खाना मत बनाओ। आज हम बाहर ही खाना खा लेंगे। अगर तुम्हारा काम हो गया हो तो तुम जाओ।' शैल ने गुलाबो को छुट्टी दे दी। गुलाबो खुश होती हुई चली गई।

कुछ देर जोरों की बारिश बरस कर पूरी तरह से थम चुकी थी और सूरज देवता भी फिर से सीना ताने निकल प े थे। दोनों बाज़ार शापिंग के लिए निकल प ीं। थो ी-बहुत शापिंग करने के बाद वे लौट रही थीं कि अचानक शैल को कुछ याद हो आया, वह बोली, 'नीता, पास ही दूर के रिश्ते के भइया रहते हैं। उन्हें अक्सर मुझसे शिकायत रहती है कि मैं एक ही शहर में रहने के बावजूद उनके यहाँ नहीं आती। चलो आज यहाँ तक आये हैं तो उनका हाल-चाल भी पूछते चलें, इससे उनकी शिकायत भी दूर हो जायेगी।' न चाहते हुए भी उसे शैल के साथ जाना प ा।

दोनों जब उनके यहाँ पहुँचीं तो देखा कि शैल का भाई नितिन अधलेटा-सा कुछ पढ़ रहा था। उन्हें आते देख वह उठ प ा। अरे आओ आओ शैल, आज सूरज किधर से निकल प ा भाई कि हमारी बहना को हमारी याद आ गई?'

'ऐसी बात नहीं है भइया, याद तो हमेशा आपकी आती है लेकिन समय ही नहीं मिल पाता। भइया, भाभी व बच्चे नहीं हैं क्या?' नितिन ने बताया कि उसकी भाभी व बच्चे मायके गये हुए हैं। फिर नीता का परिचय नितिन से करवाते हुये शैल ने कहा, 'इनसे मिलिये भइया, ये हमारे कॉलेज की हिन्दी की लेक्चरर हैं, नीता।'

दोनों ने आपस में अभिवादन किया। नितिन ने चाय-कॉफी के लिए पूछा तो उन्होंने मना कर दिया। घ ी की ओर देख कर नितिन बोला, 'अगर आप लोग फ्री हो तो चलो पिक्चर देख आएँ?'

शैल तो फौरन तैयार हो गई। शैल की ज़िद पर नीता को भी न चाहते हुये जाना प ा। सिनेमा हॉल के पास में ही एक रेस्तराँ में उन लोगों ने लंच किया। फिर शो का समय होते ही वे हॉल में आ गये। नीता को नितिन के पास की जगह मिली। फिल्म शुरू हुई। अँधेरा होते ही उसे लगा कि नितिन का हाथ उसके हाथ पर आ गया है। उसे लगा कि शायद गलती से ऐसा हो गया हो, उसने धीरे से अपना हाथ खींच लिया। धीरे-धीरे नितिन की हरकतें बढ़ने लगीं। एक बार तो उसकी इच्छा हुई कि उठ कर चली जाये लेकिन फिर यह सोच कर संकोचवश बैठी रही कि शैल क्या कहेगी। इंटरबेल में उसने बहाना बना कर जगह बदल ली। उसका मन फिल्म में कतई न लगा। राम-राम कहते हुए फिल्म समाप्त हुई।

घर पहुँच कर पर्स पलंग पर फेंक कर वह औंधे लेटते हुए फफक-फफककर रो प ी। 'अकेली औरत की इस दुनियाँ में कोई कदर नहीं होती। वहशी मर्द औरत को अकेली पाकर भे ि ये की तरह उसे दबोचना चाहते हैं।' उसे ऋषि की बहुत याद आई। 'अगर आज वे साथ होते तो क्या इस तरह के हालात होते। उससे ब ी भूल हो गई। इस तरह से जल्दबाजी में फैसला कर उसे ऋषि को छो कर नहीं आना था।' ऋषि का नाम ज़ेहन में आते ही वो अतीत की गहराइयों में डूब गई।

ऋषि स्टेट बैंक में मैनेजर के पद पर थे। उनके माता-पिता बचपन में ही गुज़र गये थे। बुआ ने ही उन्हें पाल-पोसकर ब ा किया था। वह अपनी बुआ के यहाँ ही रहते थे। एक बार ऋषि छुट्टियों में चाची के यहाँ आये हुये थे। ऋषि के चाचा-चाची नीता के घरवालों से कुछ ही दूर रहते थे। उनके चाचा-चाची नीता को बहुत पसंद करते थे। जब ऋषि वहाँ आये तब उन्होंने उनके मम्मी-पापा से उसकी व ऋषि की बात की थी। ऋषि ने तो उसे देखते ही पसंद कर लिया था। कुछ ही दिनों में उसकी व ऋषि की शादी हो गई थी। ऋषि उसे बहुत चाहते थे। वो सर्विस के अलावा पार्ट टाइम में लेखन भी करते थे। वो बहुत अच्छी कहानियाँ लिखते थे जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में व रेडियो पर भी आती रहती थीं। उसे अपने पति पर बहुत नाज़ था। धीरे-धीरे ऋषि को कहानी के क्षेत्र में काफी यश मिला। उसके नाम काफी फैन-मेल आने लगे थे। विशेषकर पंजाब से सुनीता नाम की किसी ल की के खुशबू भरे रंग-बिरंगे लिफ़ाफे में अक्सर पत्र आते। ऋषि सारे पत्र उसे पढ़ देते। वह खुशी-खुशी सुनीता का पत्र पढ़ती। सुनीता का पत्र आने पर एक बार ऋषि ने मज़ाक में कहा था - 'देख लो डार्लिंग, तुम्हारे अलाव भी हमारे कई दीवाने हैं।' कहते-कहते वो जोरों से हँस प े थे। बाद में बोले, 'लगता है कि कोई कच्ची उम्र की छात्रा है जो उनकी कहानियों को पढ़ कर भावुकतावश उन्हें पत्र लिखती है।' वैसे तो उसके पत्रों में कोई खास बात न होती लेकिन सम्बोधन व अंत प्यार-भरा रहता। शुरू-शुरू में तो उसे कुछ नहीं लगता था लेकिन नारी स्वाभाव जो ठहरा, मन में थो ी-बहुत ईर्ष्या की भावना आ ही जाती। एक बार बातों-बातों में उसने अपनी प ोसिन ऊषा को यह बात बताई तो ऊषा ने उसके कान भरने शुरू कर दिये, कहती, 'देख लेना, एक दिन भाईसाहब भटक जाएँगे। तुम ख़्याल रखा करो। आजकल के मर्दों का कोई भरोसा नहीं कब फिसल जाएँ।' वह इस घटना के बाद बहुत डर गई थी।

सुनीता के पत्रों का सिलसिला चलता रहा। अब तो वह प्रेम से सराबोर रहने लगे। इससे नीता को बहुत ज्यादा ईर्ष्या होने लगी। अब वह ऋषि की हर गतिविधि पर, उसके लेखन पर संदेह की नज़र रखने लगी जिसकी वज़ह से आये दिन उन दोनों के बीच अनबन होने लगी। इस वज़ह से ऋषि भी बहुत टेन्शन में रहने लगे। पहले तो वो अलग सोने लगे, फिर दोनों के बीच बातचीत भी बंद हो गई।

इसी दौरान एक दिन इसी बात को लेकर दोनों के बीच काफी कहा-सुनी हो गई, और गुस्से में आकर उसने ऋषि का घर छो दिया व मायके चली आई। लेकिन कुछ ही दिनों में मायके वालों का रवैया भी बदल गया। उसके मायके वाले चाहते थे कि वह अपने घर वापिस चली जाये। लेकिन वह अपनी ज़िद पर अ ी रही और एक दिन वह अपने माता-पिता को बताये बिना दूसरे शहर में रहनेवाली अपनी एक सहेली के पास चली आई। हिन्दी में फर्स्ट डिवीज़न में एम.ए.पास होने के कारण उसकी सहेली के भाई ने उसे वहीं एक कॉलेज में लेक्चरर की सर्विस दिलवा दी। तब से वह इसी शहर में बस गई थी। कुछ दिनों बाद गुस्सा शांत होने पर उसे लगा था कि शायद उससे बहुत ब ी भूल हो गई है। लेकिन अब पछताने से क्या फायदा। कई बार उसका मन किया कि वो ऋषि से फोन पर बात करे, लेकिन फिर उसका अहं उसके आ े आ जाता। इसी ऊहापोह ने उनके संबंधों की दूरी और बढ़ा दी। यही सब सोचते-सोचते आँसू बहाते हुए न जाने उसे कब नींद आ गई, पता ही न चला।

दूसरे दिन सुबह जब वह कॉलेज जा रही थी, अचानक उसकी नज़र कॉलेज कैंटीन की तरफ़ उठी। उसने वहाँ ऋषि को एक सुदंर युवती के साथ बैठे हुये चाय पीते देखा। एक बारगी तो उसके कदम ल ख ा गये। इधर ऋषि की नज़र भी उस पर प चुकी थी। वह उठ कर बाहर आता इतने में

वह मुँह फेर कर तेज कदमों से कॉलेज चली गई। एक बार फिर मन ने विद्रोह करना शुरू किया - ये मर्द होते ही ऐसे हैं....ऊं....हँ....समझते क्या हैं अपने को?

मन एकदम भारी हो उठा था। लग रहा था जैसे वह अभी फूट-फूटकर रो प ेगी। किसी तरह से अपने आप को सँभाला। मुश्किल से दो पीरियड ही पढ़ा पाई। फिर छुट्टी लेकर घर आ गई। उसने गुलाबो से चाय बनाने को कहा व डिस्प्रीन खाकर पलंग पर लेट गई। आज ऋषि को यूँ अचानक यहाँ देख कर वह फिर बेचैन हो उठी। कमरा जैसे घूमता हुआ नज़र आ रहा था।

तभी घंटी की आवाज़ ने उसे चौंका दिया। कौन हो सकता है इस वक्त वह सोच रही थी, तभी उसने देखा गुलाबो उसे बुलाने आ गई थी, कह रही थी कि कोई साहब आपसे मिलना चाह रहे हैं, कह रहे हैं बाहर से आये हैं। वह मुश्किल से उठ ख ी हुई। धीमे कदमों से चल कर वह ड्राइंगरूम के दरवाज़े पर पहुँची तो यह देख कर अवाक् रह गई कि सामने सोफे पर ऋषि बैठे हैं। मन तो किया कि जाकर अपने ऋषि से लिपट जाये तथा मुक्के मार-मारकर पूछे कि कहाँ थे अब तक? क्यों त पाया मुझे इतना? फिर एकाएक सुबह वाली घटना याद आते ही उसके बढ़ते कदम मानों रुक से गये थे। तभी ऋषि की नज़र उस पर प ी बोले, 'कैसी हो नीतू? अब तक नाराज़ हो मुझसे?' ऋषि भावुक होकर यह कह रहे थे। ऐसा लग रहा था कि अभी रो प ेंगे।

वह वैसे ही ज वत् दरवाज़े पर ख ी थी। उसका अहं उसे आगे बढ़ने से रोक रहा था। आज एक बार फिर वही नारी ज़ात का स्वाभाव उसके आ े आ गया था। वह मन ही मन बुदबुदा रही थी, अब जाओ न उसी रेस्तराँ वाली ल की के पास। यहाँ क्यों आये हो।

ऋषि उसके करीब आये और बोले, 'नीतू, तुम इस तरह मुझे अकेला छो कर क्यों चली आईं। तुम्हारे चले जाने से मैं अकेला तन्हा तुम्हे, कहाँ-कहाँ तलाश करता फिर रहा था। मेरा तो जैसे सब कुछ लुट गया था। क्यों नीतू क्यों....आखिर ऐसी कौनसी ब ी भूल हो गई थी मुझसे? आज रिश्ते की बहन का कॉलेज में एडमिशन कराने यहाँ आया था तब सुबह मैंने तुम्हें देखा था। मैं तुम्हें पुकारता हुआ पीछे दौ ा भी, लेकिन तब तक तुम चली गई थीं। कॉलेज में पता चला कि तुम इसी कॉलेज में पढ़ाती हो तो कॉलेज से तुम्हारे घर का पता लेकर भागा-भागा यहाँ तुमसे मिलने चला आया। प्लीज़....मेरे साथ अपने घर वापिस चलो नीतू। तुम्हारे बिना मेरा जीवन जैसे बिखर-सा गया है। अगर तुम्हें मेरा लिखना पसंद नहीं है न, तो मैं वह छो दूँगा। कहते-कहते ऋषि लगभग रो से प े थे। अब नीतू के सब्र का बाँध भी टूट गया था। वह ल ख ाती हुई आगे बढ़ी और ऋषि से लिपट गई। ऋषि ने उसे अपनी बाँहों में समेट लिया। वह आँसू-भरी आँखों से ऋषि को देखते हुये रुँधे गले से बोल प ी, 'मुझे माफ कर दो ऋषि, मुझे मेरी गलती का एहसास हो गया है। और हाँ, तुम लिखना नहीं छो ोगे। तुम्हें तो अभी बहुत नाम कमाना है लेखन के क्षेत्र में।'

'लेकिन....'

'बस ऋषि' नीतू ने उसके मुँह पर ऊँगली रखते हुये कहा, 'अब आगे कुछ नहीं कहोगे तुम।'

'लेकिन भाभी, फिर किसी सुनीता का पत्र आ गया तो....' सहसा उसकी ननद ने प्रवेश करते हुए कहा। वह अपनी ननद से लिपटते हुये बोली, 'अब मैं किसी सुनीता के पत्र आने पर नाराज़ नहीं होऊँगी।' फिर तीनों का मिला-जुला कहकहा गूँज उठा।

दर्द

निर्मल सिद्धू

पल-पल ज़िन्दगी का अहसास दिलाता है दर्द
जिन्दा हूँ अभी तक क्योंकि मुझमें जिन्दा है दर्द
ज़ेहन के समुन्दर में लहरों की तरह उठता है दर्द
जिस्म से शुरू होकर रूह तक आ पहुँचा है दर्द
जिस्म के रोम-रोम में काँटे की चुभन देता है दर्द
हर घ ी नस-नस में लहू की तरह दौ ता है दर्द
दिलो-दिमाग की नसों में चटखता रहता है दर्द
अंग-अंग में अक्सर तूफ़ान उठाता रहता है दर्द
रात-रात भर साँस को खूब गर्माता है दर्द
सुबह फिर चेहरे पर धीमा-धीमा मुस्कुराता है दर्द
एक-एक रेशे में कई-कई कहानियाँ बतलाता है दर्द
जिनके हर किरदार में खुद ही खुद नज़र आता है दर्द
शबे ग़म पैमानों में कभी डूब जाता है दर्द
दिन के उजाले में बरबस फिर उभर आता है दर्द
दिल के अरमानों में जब लम्हा-लम्हा मचलता है दर्द
अश्क़ बन तब आँख से क़तरा-क़तरा पिघलता है दर्द
जुदाई में किसी की खून के आँसू बहाता है दर्द
तन्हाई में मुझे फिर बेपनाह रुलाता है दर्द
रुसवाई में ज़माने की बहुत कुलबुलाता है दर्द
शहनाई के सुरों में भी अक्सर ढ़ल जाता है दर्द
किस्मत की लकीरों में मुझको सिर्फ़ दिखाई देता है दर्द
उल्फ़त की वादियों में भी केवल गूँजता रहता है दर्द
हकीक़त की ज़मीं पर बार-बार उगता रहता है दर्द
फुरसत में भी मुझसे बातें करता है तो केवल दर्द
अनगिनत ज़ख्म देकर फिर क्यूँ परेशान है दर्द
इंसान के हौसले से लगता थो ा अनजान है दर्द
ज़ब्त करने के माद्दे से भी ज़रा नादान है दर्द
नहीं जानता ये राहे मुहब्बत इश्क़ की जान है दर्द
पल-पल ज़िन्दगी का अहसास दिलाता है दर्द
जिन्दा हूँ अभी तक क्योंकि मुझमें जिन्दा है दर्द

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित